तच्च वियारो सारो

आचार्य वसुनंदी जी रचितम्

-:संपादक:-

एलाचार्य मुनि वसुनंदी

प्रकाशकः

डी०सी० मीडीया ''निकुंज'' टूण्डला
फिरोजाबाद उ०प्र०

पुण्यार्जक श्रावक

श्रीमती सरोज जैन
धर्म पत्नी ज्ञानेन्द्र कुमार जैन
विनीता जैन धर्म पत्नी
राजाबाबू जैन
श्रीमती अंशु जैन धर्म पत्नी
अमित जैन
पौत्रः- अनंत जैन, सम्भव जैन
अरिहंत जैन
पौत्रीः- शुभांगी जैन, शिवांगी जैन
चक्कर रोड, वैतूल (म०प्र०)
के सौजन्य से
१००० प्रतियाँ प्रकाशित

कृतिः

तच्चवियारो सारो

शुभाशीषः

प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती दि. जैनाचार्य
श्री १०८ विद्यानंद जी महाराज

संपादकः

एलाचार्य मुनि वसुनन्दी

सहयोगीः

संघस्थ सभी साधुवृंद एवं त्यागी व्रती

प्रथम संस्करणः **मार्च २०११**
२१०० प्रतियाँ

मूल्यः **२५ रुपये**

प्रकाशकः

डी.सी. मीडीया टूण्डला फिरोजाबाद उ.प्र.

मुद्रकः

जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज'' मो० 9058017645

प्राप्ति स्थानः

श्री सत्यार्थी मीडीया राष्ट्रीय कार्यालय
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

वसुनंदि सूरिइयो तच्चवियारो सारो

(वसुनन्दि सूरि रचित 'तत्व विचार सार')

णमियं जिण पास पयं, विग्घ हरं पणय वंछियत्थ पयं।
वोच्छं तच्च वियारं संखेवेणं निसामेह।।1।।

अन्वयार्थः– (पणय वंछि यत्थ पयं) प्रणतजनों को वांछित वस्तु देने वाले (विग्घहरं) विघ्नों को हरण करने वाले (जिण पास पयं) पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के चरणों को (णमियं) नमस्कार करके (तच्च वियारं) तत्त्व विचार नामक ग्रन्थ को (संखेवेणं) संक्षेप से (वोच्छं) कहूँगा। अतः (निसामेह) ध्यानपूर्वक सुनो!

सुय सायरो अपारो, आकंथोव्वं वयं च दुम्मेहा।
तं किंपि सिक्खि यव्वं, जं कज्ज करं च थोव्वं च।।2।।

अन्वयार्थः– (सुय सायरो) शास्त्ररूपी समुद्र (अपारो) अथाह अपरिमित है (आकं थोव्वं) काल थोड़ा है (च) और (वयं दुम्मेहा) हम लोग दुर्बुद्धि हैं। अतः (तं जं किंपि) वह जो कुछ भी (कज्ज करं) कार्यकारी हो (च) भले ही (थोव्वं) थोड़ा हो (सिक्खि यव्वं) सीख लेना णमोकार महामंत्र प्रकरण चाहिये।

घण घाइं कम्म मुक्का, अरहंता तह य सव्व सिद्धाय।
आइरिया उवज्झाया, पवरा य तह य सव्व साहू य।।3।।
एयाण णमोयारो, पंचण्हं पवर लक्खण धराणं।
भवियाण होइ सरणं संसारे संसरं ताणं।।4।।

अन्वयार्थः– (पवर लक्खण धराणं) १००८ श्रेष्ठ लक्षणों को धारण करने वाले (घण धाइं कम्म मुक्का) सघन घातिया कर्मों से मुक्त (अरहंता) अरिहंतो को (तह) उसी तरह सम्पूर्ण घातिया-अघातिया कर्मों से मुक्त (सव्व सिद्धाय) सभी सिद्धों को (पवरा आइरिया) श्रेष्ठ आचार्यों को (उवज्झाया) उपाध्यायों को (य सव्व साहू) और सभी साधुओं को (एयाण पंचण्हं णमोयारो) ऐसे पाँचों परमेष्ठियों को किया नमस्कार (संसारे संसरं ताणं) संसार में संसरण, परिभ्रमण करने वाले (भवियाण) भव्य जीवों को (सरणं होइ) शरणभूत होता है।

उड्ढ महो तिरियम्मि य, जिण णवकारो पहाणओणवरं।
णरसुर सिव सुक्खाणं, कारणं इत्थ भुवणम्मि।।5।।

अन्वयार्थः– (उड्ढ महो तिरियम्मि य) उर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक में (जिन णवकारो पहाणओ) जिन नमस्कार मंत्र प्रधान हैं। (णवरं) विशेषता यह है कि णमोकार महामंत्र (इत्थ भुवणम्मि) इस संसार में (णर सुर सिव सुक्खाणं) मनुष्य, देव और शिव (मोक्ष) के सुखों का (कारणं) कारणभूत है अर्थात् देने वाला है।

तेण इमो णिच्चम्मि य, पढ़िज्जइ सुत्तु ट्ठिएहिं अणवरयं।
होहंचि य दुह दलणो, सुह जणओ भविय लोयस्स।।6।।

अन्वयार्थः- (सुत्तु ट्ठियहिं) आगमाभ्यासी पुरुषों को (इमो) इस नमस्कार मंत्र को (अणवरयं) निरंतर (य णिच्चम्मि पढिज्जइ) और सभी कालों में पढ़ना चाहिये, (तेण) उससे (भविय लोयस्स) भव्य जीवों के (दुह दलणो) दुःखों का विनाश (य) और (सुह जणओ) सुखों की उत्पत्ति (होहंचि) होती है।

एगो वि णमोयारो, जेण कओ भत्ति णिब्भर मणेण।
खविऊण कम्म रासी, पत्ता मुक्ख फलं ते वि।।7।।

अन्वयार्थः- (जेण) जिसने (भत्ति णिब्भर मणेण) भक्ति भाव से भरे मन से (एगो वि) एक बार भी (णमोयारो) णमोकार महामन्त्र का (कओ) जाप किया (ते वि) वे भव्य जीव भी (कम्म रासी खविऊण) कर्मों के समूह का नाशकर (मुक्ख फलं पत्ता) मोक्षरूपी फल को प्राप्त करते हैं।

जाए वि जो पढिज्जइ, जेण विजायस्स होई फल रिद्धि।
अवसाणे हि पढिज्जइ, जेण मओ सुग्गइं जाइ।।8।।

अन्वयार्थः– (जाए वि जो) जब भी जो णमोकार महामंत्र को (पढिज्जई) पढ़ता है (जेण) उससे (विजायस्स) उस ज्ञानी पुरुष के (फलरिद्धि) समृद्धि रूप फल की (होई) प्राप्ति होती है तथा (अवसाणे हि पढिज्जइ) मरणकाल में पढ़ता है (जेण मओ) उससे मरण को प्राप्त होता हुआ भी (सुग्गइं जाइ) सुगति अर्थात् स्वर्गादि में जाता है।

अवइहिं पि पढिज्जइ, जेण लंघेइ आवइ सयाइं।
रिद्धिहिं पि पढिज्जइ, जेण वि सो जाइ वित्थारं।।9।।

अन्वयार्थः- (आवइहिं पि पढिज्जइ) जो आपदाओं में णमोकार महामंत्र को पढ़ता है (जेण) उसके प्रभाव से (आवइ सयाइं लंलेइ) सैकड़ों विघ्न बाधाओं को लांघ जाता है तथा (रिद्धिहिं पि पढिज्जई) जो समृद्धियों में भी पढ़ता है (जेण) उससे (सो) वह (वित्थार जाइ) समृद्धि के विस्तार को प्राप्त होता है अर्थात् और अधिक समृद्धि हासिल कर सुखी हो जाता है।

नर सिरि हुंति सिराणं, विज्जा हरणेइ सुर वरिन्दाणं।
जाण इमो णवकारो, सा सुव्वए इट्ठिओ कंठे।।10।।

अन्वयार्थः- (सा) जो (इमो णवकारो) इस णमोकार महामंत्र को (सुव्वए) अच्छे व्रतों के साथ (कंठे इट्ठिओ) कंठ में इष्ट रूप से धारण करता है (सा) वह (नर सिरि) मनुष्यों की लक्ष्मी (विज्जा हरणेइ) विद्याधरों की लक्ष्मी (सुर वरिन्दाणं) देवेन्द्रों की लक्ष्मी का (सिराणं हुंति) प्रधान स्वामी होता है। यह सब णमोकार महामंत्र का प्रभाव (जाण) जानो।

जह अहिणादट्ठाणं, गारूड मंतो विसं पणासेई।
तह णवकारो मंतो, पाव विसं णासये असेसं।।11।।

अन्वयार्थः– (जह) जैसे (अहिणा दट्ठाणं) सर्प के द्वारा डसे गए प्राणी के (विसं) विष को (गारूड मंतो) गारूड़ विद्या संबंधी मंत्र (पणासेइ) नष्ट कर देता

है (तह) उसी प्रकार (णवकारो मंतो) नमस्कार महामंत्र (असेसं पाव विसं) सम्पूर्ण पाप रूपी विष को (णासये) नाश कर देता है।

किं एस महा रयणं, किं वा चिंता मणिव्व णवकारो।
कप्प दुम सरिया ण हु, ण हु ताण वि अहिय यरो।।12।।

अन्वयार्थः– (किं एस) क्या यह (णवकारो) नमस्कार मंत्र (कप्प दुम सरिसा) कल्पवृक्ष के समान है, (महारयणं) महारत्न है (किं वा) अथवा क्या (चिंता मणिव्व) चिंतामणि रत्न है (ण हु ण हु) नहीं नहीं (ताण वि) इनसे भी (अहिय यरो) बढ़कर है अर्थात् महा महिमाशाली रत्न है।

चिंतामणि रयणाइ, कप्पतरु एग जम्म सुह हेउ।
णवयारो पुणु पवरो, सग्ग पवग्गाण दायारो।।13।।

अन्वयार्थः- (चिंतामणि रयणा इ) चिन्तामणि रत्न तथा (कप्पतरु) कल्पवृक्ष (एग जम्म सहु हेउ) एक जन्म के ही सुख के कारण हैं (पुणु) परन्तु (पवरो णवयारो) श्रेष्ठ नमस्कार महामंत्र (सग्ग पवग्गाण दायारो) स्वर्ग और मोक्षलक्ष्मी को देने वाला है।

जं किंचि परम तत्तं, परमप्पय कारणं पि जं किंपि।
तत्थ इमो णवयारो, झाइज्जइ परम जोइहिं।।14।।

अन्वयार्थः– (जं किंचि परम तत्तं) जो कुछ भी सारभूत परम तत्त्व है (परमप्पय कारणं पि) परम श्रेष्ठ मोक्षपद का कारण (जं किंपि) जो कुछ भी है (तत्थ) उसमें (इमो णवयारो) इस णमोकार मंत्र का (परम जोइहिं) श्रेष्ठ योगियों के द्वारा (झाइज्जइ) ध्यान किया जाता है।

जो गुणइ लक्ख मेगं, पूइविही जिण णमोक्कारं।
तित्थयर नाम गोत्तं, सो बंधइ णत्थि संदेहो।।15।।

अन्वयार्थः- (जो पूइविही) जो पूजा विधि पूर्वक (लक्ख मेगं) एक लाख (जिण णमोक्कारं गुणइ) जिन णमोकार महामंत्र जपता है (सो) वह (तित्थयर नाम

गोत्तं) तीर्थंकर नाम गोत्र को (बंधइ) बांधता है, इसमें (संदेहो णत्थि) संदेह नहीं है।

सट्ठि सयं विजयाणं, पवराणं जत्थ सासओ कालो।
तत्थ वि जिण णवकारो, एसो वि पढिज्जए णवरं।।16।।

अन्वयार्थः- (सट्ठिसयं) एक सौ साठ (पवराणं) श्रेष्ठ (विजयाणं) विजयार्द्धों में (जत्थ) जहाँ (सासओ कालो) शाश्वत् चतुर्थ काल रहता है, (तत्थ वि) वहाँ भी (एसो) यह (जिण णवकारो) जिन नमस्कार मंत्र (णवरं) विशेष रूप से (पढिज्जए) पढ़ा जाता है।

ऐरावएहिं पंचहि, पंचहि भरहेहिं सुच्चय पठंति।
जिण णवकारो एसो, सासय सिव सुक्ख दायारो।।17।।

अन्वयार्थः- (पंचहि ऐरावएहिं) पाँच ऐरावत (पंचहि भरहेहिं) पाँच भरत क्षेत्रों में रहने वाले भव्य जीव (सासय सिव सुक्ख) शाश्वत् शिव सुख (दायारो) देने वाले (एसो जिण णवकारो) इस जिन नमस्कार महामंत्र को (सुच्चय पठंति) निरंतर पढ़ते हैं।

जेण मरंतेण इमो, णवकारो पाविओ कयत्थेण।
सो देव लोए गतुं, परम पयं ते च पावेइ।।18।।

अन्वयार्थः- (जेण) जिस (कयत्थेण) कृतार्थ पुण्यशाली भव्य जीव ने (मरंतेण) मरते समय (इमो णवकारो) इस णमोकार महामंत्र को (पाविओ) प्राप्त किया (सो देव लोए गतुं) वह देवलोक में जाकर (च) और (तं परम पयं) वहाँ से आकर मुनि बनकर उस परम पद मोक्ष को (पावेइ) प्राप्त करता है।

एसो अणाइ कालो, अणाइ जीवो अणाइ जिण धम्मो।
तइआ वि ते पढंता, एसोच्चिय जिण णमोक्कारो।।19।।

अन्वयार्थः- (एसो अणाइ कालो) यह काल अनादि है (अणाइ जीवो) अनादि समय से जीव हैं (अणाइ जिणधम्मो) अनादि काल से जिनधर्म है (तइआवि) तब भी भव्य जीव (एसोच्चिय जिण णमोक्कारो) इस जिन नमस्कार महामंत्र को

निरंतर (पढंता) पढ़ते है।

जे के वि गया मोक्खं, गच्छंति य जे केइ कम्म मलमुक्का।
ले सव्वं वि य जाणसु, जिण णवकारप्प भावेण।।20।।

अन्वयार्थः– (कम्म मल मुक्का जे केइ) कर्ममल से मुक्त होकर जो कोई भव्य जीव (मोक्खं गया) मोक्ष गए हैं (जे के वि गच्छंति) जो कोई भव्य जीव इस समय मोक्ष जा रहे हैं (य) या जायेंगे (ते सव्वं वि) वे सब (जिणणवकारप्पभावेण) जिन नमस्कार महामंत्र के प्रभाव से ही मोक्ष गए हैं (जाणसु) ऐसा जानो।

इह एसो णवकारो, भणिओ सुर सिद्ध खयर पमुहेहिं।
जो पढई भत्ति जुत्तो, सो पावई सासयं ढाणं।।21।।

अन्वयार्थः- (इह) इस लोक में, (जो) जो (एसो णवकारो) यह णमोकार महामंत्र, (भणिदो) कहा है (सो) वह (सुर सिद्ध खयर पमुहेहिं) सुरों, सिद्धों, खेचरों के प्रमुखों द्वारा (भक्तिजुत्तो पढई) जो भक्तिपूर्वक पढ़ा जाता है उससे वे (सासयं ढाणं) शाश्वत शिव स्थान मोक्ष को (पावई) प्राप्त करते हैं।

अडवि गिरि रण मज्झे, भयं पणासेई चिंतिदं संतो।
रक्खइ भविय सयाइं, माया जह पुत्तडिंभाई।।22।।

अन्वयार्थः- (अडवि गिरि रण मज्झे) जंगल, पर्वत और युद्ध के बीच में (संतो चिंतउं) णमोकार महामंत्र का चिंतवन (भयं पणासेई) भय को नष्ट करता है, (जह) जैसे (माया) माता (पुत्तडिंभाई) पुत्र स्नेह से शिशु की रक्षा करती है उसी तरह णमोकार महामंत्र (भविय सयाइं रक्खइ) भव्यजीवों की सदा रक्षा करता है।

थंभेई जलं जलणं, चिंतिय मेत्तो य पंच णवकारो।
अरि मारि चोर राउल, घोरुवसग्गं पणासेइ।।23।।

अन्वयार्थः- (पंच णवकारो) पंच नमस्कार महामंत्र का (चिंतिय मेत्तो) चिंतवन मात्र (जलं जलणं थंभेइ) जल और अग्नि को रोक देता है, स्तम्भित कर

देता है (अरिमारि) शत्रु, महामारी प्लेग (चोर राउल घोरु वसग्गं) चोर राजा आदि के द्वारा किये गए भयंकर उपसर्गों को (पणासेइ) नष्ट कर देता है।

ण य किंचि तस्स पह वह, डाइणि वेयाल रक्ख मारि भयं।
णवकार पभावेण, णासंति सयल दुरियाइं।।24।।

अन्वयार्थः– (तस्स पहवह) जो नमस्कार महामंत्र का स्मरण करता है, उस पथिक को (डाइणि वेयाल रक्ख मारि भयं) डाकिनी, बेताल, राक्षस, मारि के भय (ण किंचि) कुछ भी नहीं होते हैं (य) और (णवकार पभावेण) णमोकार महामंत्र के प्रभाव से (सयल दुरियाइं णासंति) सम्पूर्ण पाप समूह नष्ट हो जाते हैं।

वाहि जल जलण तक्कर, हरि करि संगाम विसहर भयाइं।
णासंति तक्खणेण, जिण णवकारप्प भवेण।।25।।

अन्वयार्थः– (वाहि) व्याधि (जल) जल (जलण) अग्नि (तक्कर हरिकरि) चोर सिंह हाथी (संगाम विसहर भयाइं) युद्ध व सर्प से उत्पन्न भय (जिण णवकारप्प भावेण) जिन नमस्कार महामंत्र के प्रभाव से (तक्खणेण) तत्काल ही (णासंति) नष्ट हो जाते हैं।

हियय गुहाये णवकार, केसरी जाण संढिओ णिच्चं।
कम्मट्ठ गंठिओ वड्ढव्वयं ताण पण्णट्ठं।।26।।

अन्वयार्थः– (जाण) जिसके (हियय गुहाये) हृदयरूपी गुफा में (णवकार केसरी) णमोकार मंत्र रूपी सिंह (णिच्चं) हमेशा (संढिओ) विराजमान रहता है (ताण) उसके (कम्मट्ठ गंठिओ) अष्टकर्मरूपी ग्रन्थि की (वड्ढव्वयं) वृद्धि का होना (पण्णट्ठं) नष्ट हो जाता है अर्थात् रुक जाता है।

तव संजम णियम रहो, पंच णमोकार सारहि णिउत्तो।
णाण तुरंगम जुत्तो, णेइ फुडं परम णिव्वाणं।।27।।

अन्वयार्थः- भव्य जीव को (तव संजम णियम रहो) तप, संयम, नियम रूपीरथ (पंच णमोकार सारहि णिउत्तो) पंच नमस्कार मंत्र रूपी सारथी से नियुक्त

(णाण तुरंग जुत्तो) ज्ञान रूपी घोड़ों से सहित होने पर (फुडं) स्पष्ट रूप से (परम णिव्वाणं) परम निर्वाण को।। (णेइ) ले जाता है।

जिण सासणस्स सारो, चउदस पुव्वाण जो समुद्धारो।
जस्स मणे णवकारो, संसारो तस्स किं कुणइ।।28।।

अन्वयार्थः- (जो) जो नमस्कार मंत्र (जिण सासणस्स सारो) जिनशासन का सार है (चउदस पुव्वाण समुद्धारो) चौदह पूर्वों का निचोड़ है, (जस्स मणे) जिस भव्य जीव के मन में (णवकारो) णमोकार मंत्र है, (तस्स) उसका (संसारो किं कुणइ) संसार क्या कर सकता है? अर्थात् उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है।

।। इति णमोकार प्रकरण।।

धर्मप्रकरण

कोहेण जो ण तप्पदि, सुर णर तिरिएहिं कीरमाणे वि।
उवसग्गे वि रउद्दे, तस्स खमा णिम्मला होइ।।29।।

अन्वयार्थः– (सुर णर तिरएहिं) देव, मनुष्य और तिर्यंचों के द्वारा (रउद्दे उवसग्गे) भयंकर उपसर्ग के (कीरमाणे वि) किये जाने पर भी (जो कोहेण ण तप्पदि) जो क्रोध के द्वारा संतप्त नहीं होता अर्थात् क्रोध नहीं करता (तस्स णिम्मला खमा होइ) उसके उत्तम क्षमा धर्म होता है।

उत्तम णाण पहाणो उत्तमतवयरण करण सीलो वि।
अप्पाणं जो हीयदि मद्दवरयणं हवे तस्स।।30।।

अन्वयार्थः- (उत्तम णाण पहाणो) उत्तम ज्ञान में प्रधान (उत्तम तवयरण करण सीलो वि) उत्तम तपस्या के स्वभाव वाला तपस्वी होते हुये भी (जो अप्पाणं) जो अपने आप को (हीयदि) हीन व्यक्त करता है अर्थात् घमण्ड नहीं करता है (तस्स) उस मुनि के (मद्दवरयणं हवे) उत्तम मार्दव धर्म रूपी रत्न होता है।

जो चिंतेइ ण वंकं ण कुणदि वंकं ण जंपए वंकं।
ण वि गोवदि णियदोसं अज्जव धम्मो हवे तस्स।।31।।

अन्वयार्थः- (जो चिंतेइ ण वंकं) जो मुनि कुटिल चिंतवन नहीं करता (ण कुणदि वंकं) न कुटिल कार्य करता है (ण जंपए वंकं) न कुटिल बोल ही बोलता है (वि ण णियदोसं गोवदि) और न ही अपने दोषों को छिपाता है (तस्स अज्जव धम्मो हवे) उस (मुनि) के आर्जव धर्म होता है।

सम संतोस जलेणं जो धोवदि तिव्व लोह मल पुंजं।
भोयण गिद्धि विहीणो तस्स सउच्चं हवे विमलं।।32।।

अन्वयार्थः– (जो सम संतोस जलेणं) जो समभाव और संतोष रूपी जल से (तिव्व लोह मल पुंजं धोवदि) तीव्र लोभ रूपी मल के समूह को धोता है (भोयण गिद्धि विहीणो) तथा भोजन की गृद्धता रहित होता है (तस्स विमलं सउच्चं हवे) उस (मुनि) के उत्तम शौच धर्म होता है।

जिण वयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि।
ववहारेण वि अलियं जो ण वददि सच्चवाई सो।।33।।

अन्वयार्थः– (तं पालेदुं असक्कमाणो वि) जैन शास्त्रों में कहे हुये आचार/चारित्र को पालने में असमर्थ होते हुये भी जो (जिण वयणमेव भासदि) जिन वचन का ही कथन करता है, (ववहारेण वि अलियं ण वददि) व्यवहार में भी झूठ नहीं बोलता है (सो सच्चवाई) वह सत्यवादी (साधु) है।

जो जीव रक्खणपरो गमणागमणाइ सव्वकज्जेसु।
तिणछेयं पि ण इच्छदि संजमभावो हवे तस्स।।34।।

अन्वयार्थः– (जो गमणागमणाइ सव्वकज्जेसु) जो गमन-आगमन आदि सर्व कार्यों में (जीव रक्खणपरो) जीवों की रक्षा में तत्पर है (तिणछेयं पि ण इच्छदि) तृण के भी छेद करने की इच्छा नहीं रखता है (तस्स) उस (मुनि) के (संजम भावो हवे) उत्तम संयम भाव होता है।

इह परलोय सुहाणं णिरविक्खो जो करेदि समभावो।
विविहं काय कलेसं तव धम्मो णिम्मलो तस्स।।35।।

अन्वयार्थः– (जो इह परलोय सुहाणं) जो इस लोक परलोक सम्बन्धित सुखों की (णिरविक्खो) अपेक्षा न करके (समभावो करेदि) समता भाव धारण करता है (विविहं काय कलेसं) विविध प्रकार से कायक्लेश/कायकृष करता है (तस्स) उस (मुनि) के निर्मल तप धर्म होता है।

जो चयदि मिट्ठभोजं उवयरणं रायदोससंजणयं।
वसदि य ममत्तहेदुं चाय गुणों सो हवे तस्स।।36।।

अन्वयार्थः- (जो मिट्ठ भोजं) जो मिष्ट भोजन को (रायदोस संजणयं उवयरणं) राग द्वेष को उत्पन्न करने वाले उपकरणों को (य) और (ममत्तहेदुं वसदि) ममत्व/ममकार भाव को उत्पन्न होने में निमित्त भूत वसतिका को (चयदि) छोड़ता है (तस्स) उस (मुनि) के वह त्याग गुण होता है।

तिविहेण च जो विवज्जदि चेयणमियरं च सव्वहा संगं।
लोयववहार विरदो णिग्गंथत्तं हवे तस्स।।37।।

अन्वयार्थः– (जो लोय ववहारो विरदो) जो लोक व्यवहार से विरक्त (मुनि चेयणमियरं) चेतन-अचेतन (च) और मिश्र (संगं) परिग्रह को (तिविहेण) मन-वचन-काय से (सव्वहा) सर्वथा (विवज्जदि) छोड़ देता है (तस्स) उस मुनि के (णिग्गंथत्तं हवे) निर्ग्रंथपना अर्थात् आकिंचन धर्म होता है।

जो परिहरेदि संगं महिलाणं णेव पेक्खये रूवं।
काम कहाइणिवित्तो णव विह बंभं हवे तस्स।।38।।

अन्वयार्थः– (जो महिलाणं संगं परिहरेदि) जो (मुनि) स्त्रियों की संगति से बचता है (रूवं णेव पेक्खेय) उनके रूप को नहीं निहारता है (काम कहाइ णिवित्तो) कामभोग की कथा आदि नहीं करता (तस्स) उस (मुनि) के (णव विह बंभं हवे) नौ प्रकार का ब्रह्मचर्य होता है।

जो णवि जादि वियारं तरुणि णयण कडक्ख वाण विद्धोवि।
सो चेव सूर सूरो रणसूरो ण हवे सूरो।।39।।

अन्वयार्थः– (रण सूरो ण हवे सूरो) संग्राम में शूर वास्तविक शूर नहीं है बल्कि (तरुणी णयस कडक्खवाण विद्धो वि) जो तरुण स्त्री के नयन एवं कटाक्ष रूपी बाणों से छेदा जाने पर भी (वियारं णावि जादि) विकार भाव को प्राप्त नहीं होता है, (सो चेव सूर सूरो) वही सच्चा शूरवीर होता है।

नयणाण मोकलाणं खणि खणि जोवंति परकलत्ताणं।
गलइ सुसंचिय धम्मं जल भरियं तस्स जज्जरियं।।40।।

अन्वयार्थः- (मोकलाणं नयणाणं) जो स्वच्छन्द नेत्रों से (खणि खणि) क्षण-क्षण में (परकलत्ताणं जोवंति) परस्त्रियों का अवलोकन करता है, राग भाव से उन्हें निहारता है (तस्स) उसका (सुसंचिय धम्मं) अच्छी तरह से संचित किया हुआ धर्म (जज्जरियं जलभरियं) फूटे बर्तन में भरे जल के समान (गलई) नष्ट हो जाता है।

एसो दहप्पयारो धम्मे दहलक्खणो हवे णियमा।
अण्णो ण हवइ धम्मो हिंसा सुहमा वि जत्थत्थि।।41।।

अन्वयार्थः- (एसो दहप्पयारो धम्मो) यह दस प्रकार का धर्म ही (दहलक्खणो णियमा हवे) नियम से दश लक्षण धर्म है (अण्णो) इसके सिवाय (जत्थ) जिसमें (सुहमावि हिंसा जत्थत्थि) सूक्ष्म भी हिंसा होती है (धम्मो ण हवइ) वह धर्म नहीं है।

।।इति धर्म प्रकरण।।

।।भावना प्रकरण।।

संसारम्मि असारे णत्थि सुहं वेयणा पउरे।
जाणंतो य हु जीवो ण कुणइ जिणदेसियं धम्मं।।42।।

अन्वयार्थः– (वाहि वेयणा पउरे) व्याधि और वेदना से प्रचुर (असारे संसारम्मि) सारहीन संसार में (सुहं णत्थि) सुख नहीं है (य हु जाणंतो जीवो) ऐसा जानता हुआ भी जीव (जिण देसियं धम्मं) जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म को (ण कुणइ) नहीं करता है।

अथिरं जीवं रिद्धि चंचलजुव्वणं पि घणसरिसं।
पचक्खं पिक्खंतो तह वि हु वंचिज्जए जीवो।।43।।

अन्यार्थः- (जीवं रिद्धि अथिरं) जीव की रिद्धि अर्थात् सम्पत्ति अस्थिर है, (जुव्वणं वि धण सरिसं चंचल) जवानी भी मेघ के समान चंचल है (तह पचक्खं पिक्खंतो वि) ऐसा प्रयच्छा देखता हुआ भी (जीवो वंचिज्जए हु) जीव संसार की माया से ठगाया ही जाता है।

घरवासे वामूढो अच्छइ आसासयाइं चिंततं।
तो ण कुणइ परत्तहियं जो ण हओ मच्चुसीहेण।।44।।

अन्वयार्थः– (घरवासे वामूढो) गृहवास में मोहित हुआ (आसासयाइं चिंततं) सैकड़ों आशाओं का चिंतवन करता हुआ (अच्छई) स्पष्ट रूप से (मच्चुसीहेण) मृत्युरूपी सिंह के द्वारा (जो ण हओ) जो नहीं मारा जाता (तो ण कुणई परितहियं) तो भी उत्कृष्ट परलोक के हेतु आत्महित को नहीं करता है।

वाही इट्ठ विओगो दारिद्दं तह जरा महा दुक्खं।
एएहिं परिग्गहिओ तई वि हू धम्मं ण किं करइ।।45।।

अन्वयार्थः– (वाही इट्ठविओगो) रोग, इष्ट वियोग (दारिद्दं) दरिद्रता (तह) तथा (जरा) बुढ़ापा (महादुक्खं) महादुःख हैं। (एएहि) इन महादुखों से (परिग्गाहिओ तई वि) घिरा होते हुये भी (हू धम्मं ण किं करई) निश्चित रूप से धर्म को क्यों नहीं करता है?

लहिऊण माणुसत्तं, कहं वि अइदुल्लहं पि रे जीव।
लग्गसु जिणवर धम्मे, अचिंत चिंतामणि कप्पे।।46।।

अन्वयार्थः- (रे जीव अइदुल्लहं पि) हे जीव! तूने अति दुर्लभ भी (माणुसत्तं) मनुष्य पर्याय को (कहं वि) किसी भी तरह (लहिऊण) प्राप्त कर लिया (अचिंत चिंतामणि कप्पे) बिना चाहे इच्छित फल को देने वाले चिंतामणि रत्न के समान (जिणवर धम्मे) जिनेन्द्र कथित धर्म में (लग्गसु) लगना चाहिये।

जीव तुमं णवमासे वसिओ असुहम्मि गब्भमज्झम्मि।
संकोडियंगवंगो विसहंतो णारयं दुक्खं।।47।।

अन्वयार्थः- (जीव तुमं) हे जीव! तूने (असुहम्मि गब्भमज्झम्मि) असुचि गर्भ के बीच में (संकोडियंगवंगो) अंगोपांगो के संकुचित रहने से (णारयं दुक्खं विसहंतो) नारकीय दुःखों को सहन करते हुये (णवमासे) नौ मास पर्यन्त (वसिओ) निवास किया।

रे जीव संपयं चिय वीसरियं तुब्भ तं महा दुक्खं।
थोवं पि जे ण कुणहसि जिणंदवरदेसियं धम्मं।।48।।

अन्वयार्थः- (रे जीव संपयं चिय) हे जीव! इस समय तू (तममहादुक्खं) उस महादुःख को (वीसरियं) भूल गया है। (तुब्भ) जो तुझे गर्भ काल में सहन करने पड़े हैं (जे) जो कि तुम (जिणंदवरदेसियं धम्मं) जिनेन्द्र भगवंतों के द्वारा उपदिष्ट धर्म को (थोवं पि) थोड़ा भी (ण कुणहसि) नहीं करते हो।

जं मारे सि रसंते जीवा रे जीव णिरवराहे व।
उवभुंजसि तं दुक्खं पत्तो अइदारुणे णरए।।49।।

अन्वयार्थः- (रे जीव) अरे जीव! (जं) जो तुम (णिरवराहे) निरपराध (जीवा) जीवों को (मारे सि) मारते हो तो वे (रसंते) रोष करते हैं, चिल्लाते हैं। (तं दुक्खं) उन निरपराध जीवों की हिंसा से उपार्जित पाप कर्म के उस दुःख रूप फल को (अइदारुणे णरये) अत्यंत भयंकर नरक में (पत्तो) पड़कर (उवभुंजसि) भोगते हो।

जं हरसि परधणाइं जं च वियारेसि पर कलत्ताइं।
तं जीव पाव णरए अइघोरे सहसि दुक्खाइं।।50।।

अन्वयार्थः- (जीव) हे जीव! (जं) जो तुम (परधणाइं) दूसरों के धन को (हरसि) हरते हो, चुराते हो (च) और (जं) जो तुम (पर कलत्ताइं) दूसरों की स्त्रियों के विषय में (वियारे सि) बुरे विचार करते हो (तं पाव दुक्खाइं) तब हे पापी जीव तुम उस पाप के दुख रूपी फलों को (अइघोरे) अत्यन्त भयंकर (णरए) नगर में (सहसि) सहन करते हो।

अथिराण चंचलाण य, खणमित्तसुहंकराण पावाणं।
दुग्गइ णिबंधणाणं, विरमसु एयाण भोयाणं।।51।।

अन्वयार्थः- (अथिराण) अस्थिर, क्षण भंगुर (चंचलाण) चंचल (य) और (खणमित्त सुहंकराण) क्षण मात्र सुख को करने वाले (दुग्गइ णिबंधणाणं) दुर्गति के कारण (पावाणं) पापों से और (एयाण भोयाणं) इन पंच इन्द्रियों के भोगों से अरे जीव! (विरमसु) तू विरक्त हो।

कोहो माणो माया लोहो तहेव पंचमो मोहो।
एए णिज्जरिऊणं वच्चसि अजरामरं ठाणं।।52।।

अन्वयाथः- (कोहो माणो माया लोहो) क्रोध, मान, माया व लोभ (तहेव) उसी तरह (पंचमो मोहो) पाँचवें मोह मिथ्यात्व (एए) इन पाँचों बन्ध के कारणों की (णिज्जरिऊणं) निर्जरा करके अरे जीव! तुम (अजरामरं ठाणं) अजर-अमर स्थान मोक्ष को (वच्चसि) जाओ।

इय णाऊण असारे संसारे दुल्लहं पि मणुयत्तं।
तह करि जिणवर धम्मं जह सिद्धं पावए अजरा।।53।।

अन्वयार्थः- (असारे संसारे) इस असार संसार में (मणुयत्तं पि) मनुष्य पर्याय ही (दुल्लहं) दुर्लभ है। (इथ णाऊण) ऐसा जानकर (तह) उस तरह (जिणवर धम्मं करि) जिन धर्म को धारण करो। (जह) जिससे (अजरा) बुढ़ापा रहित (सिद्धं) मोक्ष को (पावए) प्राप्त करो।

रे जीव पावणिग्घिण, दुलहं लहिऊण माणुसं जम्मं।
जो ण कुणसि जिण धम्मं, हा पच्छा तं विसूरिहसि।।54।।

अन्वयार्थः- (रे जीव पावणिग्घिण) अरे पाप में ग्लानि रहित जीव! तू (दुलहं) दुर्लभ (माणुसं जम्मं) मनुष्य जन्म को (लहिऊण) प्राप्त कर (जिणधम्मं ण कुणसि) यदि तू जिन धर्म को धारण नहीं करता है तो (हा) कष्ट है, दुःख है, (तं विसूरिहसि पच्छा) कि तू बाद में उस धर्म को पाने के लिये पछतायेगा।

जो ण कयं अण्णभवे धम्मं रे जीव सुंदरं विमलं।
अणु हवसि ताइं पुरुओ दुक्खाइं अणंत संसारे।।55।।

अन्वयार्थः– (रे जीव) अरे जीव! (अण्णभवे जो सुंदरं विमलं धम्मं ण कयं) अन्य भव में तूने जो सुन्दर, निर्मल जिन धर्म को धारण नहीं किया, इसलिये (अणंत संसारे) अनादि संसार में (ताइं पुरुओ दुक्खाइं) उन महान दुःखों को (अणुहवसि) अनुभव कर रहा है।

ण परो करेइ दुक्खं णेव सुहं कोइ कस्सइं वेह।
जं पुण सुचरिय दुचरिय परिणवइ पुराकयं कम्मं।।56।।

अन्वयार्थः- (इह) इस लोक में (ण परो कस्सइं दुक्खं कोइ) न कोई दूसरा किसी को दुखी करता है (व) और (णेव कस्सइं कोइ सुहं करेइ) ना ही कोई किसी को सुखी करता है। (पुण) किन्तु (जं) जो (पुराकयं) पूर्वकाल में किया हुआ (सुचरियं) समाचरित पुण्य व (दुचरियं) दुराचरित पाप (कम्मं) कर्म (परिणवई) अच्छे बुरे फल रूप परिणमन करता है अर्थात् सुख-दुःख रूप फल देता है।

जइ पइससि पायाले अडविइं अह महासमुद्दं वा।
पुव्वकयाइं न छुट्टसि अप्पाणं घायसे जइवि।।57।।

अन्वयार्थः- अरे जीव! तू (जइ पायाले) यदि पाताल में (अह) और (अडविइं) अटवी में (वा) अथवा (महासमुद्दं) महासमुद्र में (पइससि) प्रवेश करता

है, (जइवि अप्पाणं घायसे) और यद्यपि आत्मा का घात भी करता है, तो भी (पुव्वकयाइं ण छुट्टसि) पूर्वकृत पाप कर्म से छुटकारा नहीं पा सकता है।

जं चेव कयं तं चेव भुंजसि णत्थि एत्थ संदेहो।
अकयं कत्तो पावसि जइवि समो देवराएण।।58।।

अन्वयार्थः- (जं चेव कयं) अरे जीव! तूने जो पूर्व में कर्म किया है, (तं चेव भुंजसि) उसे ही तू भोगता है (एत्थ संदेहोणत्थि) इसमें संदेह नहीं है। (जइवि देवराएण समो) यद्यपि इन्द्र के समान भी हो तो भी (अकयं कत्तो) बिना किये हुये कर्म के फल को (पावसि) पाता है? अर्थात् नहीं पाता।

किससि सुससि सूससि दीहं णीससि वहसि संतावं।
धम्मेण विणा सोक्खं कत्तो रे जीव पाविहसि।।59।।

अन्वयार्थः– अरे जीव! (किससि) तू कृष होता है, (सुससि सूससि) शोक करता है और शोक करवाता है (दीह णीससि) दीर्घ निःश्वांस छोड़ता है (संतावं वहसि) संताप को धारण करता है, (रे जीव) अरे जीव! तू (धम्मेण विणा) धर्म के बिना (सोक्खं) सुख को (कत्तो) कैसे (पाविहसि) पा सकता है?

धम्मेण विणा जइ चिंतियाइं लब्भंते जीव सोक्खाइं।
तो तिहुवणम्मि सयले मणु को वि ण दुक्खिओ हुज्ज।।60।।

अन्वयार्थः– (जइ जीव धम्मेण विणा) यदि जीव धर्म के बिना (चिंतयाइं) चिंतित (सोक्खाइं) सुखों को (लब्भंते) प्राप्त करता है, (तो तिहुवणम्मि) तो तीनों लोकों में (सयले मणु को वि) सम्पूर्ण मनुष्यों में कोई भी (दुक्खिओ ण हुज्ज) दुखी न होता। किन्तु ऐसा सम्भव नहीं है।

धम्मेण कुलपसंसइ धम्मेण य दिव्वरुपसंपत्ति।
धम्मेण धणसमिद्धि धम्मेण वि वित्थरा कित्ती।।61।

अन्वयार्थः- (धम्मेण कुलपसंसइ) धर्म से कुल प्रशंसित होता है,

(धम्मेण दिव्वरूपसम्पत्ति) धर्म से दिव्य-रूप की प्राप्ति होती है, (धम्मेण धणसमिद्धि) धर्म से धन की समृद्धि होती है और (धम्मेण वि कित्ती वित्थरा) धर्म से ही कीर्ति का विस्तार होता है।

धम्मो मंगल मूलं, ओसहमूलं च सव्व दुक्खाणं।
धम्मो धणं च विमलं, धम्मो ताणं च सरणं च।।62।।

अन्वयार्थः- (धम्मे मंगल मूलं) धर्म मंगल का मूल (जड़) है, (च सव्व दुक्खाणं ओसह मूलं) और सब दुःखों को दूर करने की मूल औषध है (च) और (धम्मो विमलं धणं) धर्म निर्मल धन है (च) तथा (धम्मो) धर्म (ताणं) त्राण, रक्षक (च सरणं) और शरणभूत है।

किं जंपिएण बहुणा जं जं दीसई समत्थ तियलोए।
इंदियमणाभिरामं तं तं धम्मो फलं सव्वं।।63।।

अन्वयार्थः- (जंपि एण बहुणा किं) बहुत करने से क्या (समत्थ तियलोए) समस्त तीनों लोकों में (जं जं इंदियमणाभिरामं दीसइ) जो जो इन्द्रिय और मन के लिए सुन्दर दिखाई देता है (तं तं) वह वह (सव्वं) सब (धम्मो फलं) धर्म का फल है।

आरंभसयाइं जणो करेइ रिद्धीए कारणे मूढो।
एगं ण कुणइ धम्मं जेण व लहइंति रिद्धीओ।।64।।

अन्वयार्थः– (मूढो जणो) मोहित मूर्ख लोग (रिद्धिए कारणे) धन-सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये (आरंभ सयाइं कुणइ) सैकड़ों आरंभ करते हैं, (एगं धम्मं ण कुणइ) सिर्फ धर्म को ही नहीं करते हैं (जेण रिद्धीओ लहइंति) जिससे कि धन-सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

इह लोयम्मि वि कज्जे सव्वारंभे जह जणो कुणइ।
तह जइ लक्खंसे ण वि पर लोए ता सुही होइ।।65।।

अन्वयार्थः- (जह इह लोयम्मि) जैसे इस लोक में (जणो) मनुष्य लोग

(सव्वारंभे कज्जे कुणइ) सब प्रकार के लौकिक कार्य करते हैं, (तह) वैसे ही (जइ) यदि (परलोए लक्खंसे वि) परलोक के लक्ष्य से भी कार्य करें (ता सुही होइ) तो वे सुखी हो जावें।

धम्मेण धणं विमलं आउं दीहं च कंति सोहग्गं।
दालिद्दं दोहग्गं अकालमरणं च अहम्मेण।।66।।

अन्वयार्थः- (धम्मेण) धर्म से (विमलं) नीति न्याय से प्राप्त (धणं) शुद्ध धन से (दीहं आउं) दीर्घ आयु, (कंति) कीर्ति (च सोहग्गं) और सौभाग्य प्राप्त होता है। (अहम्मेण) अधर्म से (दालिद्दं) दरिद्रता, (दोहग्गं) दुर्भाग्य (च अकाल मरणं) और अकाल मरण होता है।

दीहर पवाससहयर पंथिएण धम्मेण कुणह संसग्गं।
सव्वो जणो णिवट्टइ तए सहत्तेण गंतव्वं।।67।।

अन्वयार्थः- (दीहर पवास सहयर) दीर्घ प्रवास के साथी (पंथिएण) पथिक को (धम्मेण) धर्म से (संसग्गं) संसर्ग (कुणह) करना चाहिये। क्योंकि (सव्वो जणो) अन्य सभी लोग (णिवट्टइ) साथ छोड़ देते हैं। (तेण) इसलिये (तए सह गंतव्वं) उस धर्म के साथ जाना चाहिये, जो कभी भी इस जीव का साथ नहीं छोड़ता है।

पणयजण पूरियासा एगे दीसंति कप्प रुक्खव्वा।
णियपुट्टं पिय अण्णे कह कहवि भरंति रंकुव्वं।।68।।

अन्वयार्थः- (कप्प रुक्खव्वा) कल्पवृक्ष के समान (पणयजण पूरियासा) प्रणत जनों की आशाओं को पूर्ण करने वाला (एगे) एक धर्म ही (दीसंति) दिखाई देता है। (अण्णे रंकुव्वं) रंक के समान दूसरे मनुष्य (णिय पुट्टं) अपने आश्रित (पिय) प्रियजनों की (कहवि) किसी भी तरह इच्छाओं को (कह भरंति) कैसे पूर्ण कर सकते हैं? अर्थात् नहीं कर सकते।

एगे दोघदघडारहेहिं जंपाण वाहणारूढ़ो।
वच्चंति सुकय पुण्णा अण्णे धावंति से पुरुओ।।69।।

अन्वयार्थः- (एगे) एक (सुकय पुण्णा) पुण्य से परिपूर्ण अर्थात् पुण्यात्मा (दो घद घडारहेहिं) हाथियों के समूह से जुते हुए रथ के द्वारा (जंपाण वाहणारूढो) शब्द करते हुए वाहन पर सवार होकर (वच्चंति) गमन करता है। (अण्णे से पुरुओ धावंति) अन्य पुण्यहीन लोग उसके आगे दौड़ते हैं।

इय जाणिऊण एयं धम्माइत्ताइं सव्व कज्जाइं।
तं तह करेइ तुरियं जह मुच्चइ सव्व दुक्खाइं।।70।।

अन्वयार्थः- (एयं धम्मा इत्ताइं) इस धर्म के आश्रय से (सव्व कज्जाइं) सम्पूर्ण कार्य होते हैं, (इय जाणिऊण) ऐसा जानकर (तं) उस धर्म को (तह) उस तरह (तुरियं) शीघ्रता से (करेइ) करो। (जह) जिससे (सव्व दुक्खाइं मुच्चइं) सब दुःखों से छुटकारा मिल जावे।

।।इति भावना प्रकरण।।

।।सम्यक्त्व प्रकरण।।

ते धण्णा ते धिणिणो ते पुणु जीवंति माणुसे लोए।
सम्मत्तं जाह थिरं भत्ती जिणसासणे णूणं।।71।।

अन्वयार्थः- (ते) जिनका (सम्मत्तं) सम्यक्-दर्शन (थिरं) स्थिर (जाह) हो गया है, (जिणसासणे णूणं भत्ती) जिन शासन में पूर्ण भक्ति है, (ते धण्णा) वे धन्य हैं, (ते धणिणो) वे धनवान हैं (पुणु ते) और वे ही (माणुसे लोए जीवंति) मनुष्य लोक में जीते हैं अर्थात् उनका ही मनुष्य जीवन सार्थक है।

गहिऊण य सम्मत्तं सुणिम्मलं सुरगिरीव निक्कंपं।
तं झाणे झाइज्जइ सावय दुक्खक्खयट्ठाए।।72।।

अन्वयार्थः- (सुणिम्मलं) निर्मल (सुरगिरीव) सुमेरूपर्वत के समान (निक्कंपं) निश्चल (सम्मत्तं गहिऊण) सम्यक्-दर्शन को धारण करके (दुक्खक्खयट्ठाए) दुःखों के क्षय नाश के लिये (सावय) श्रावक को (तं) उस

सम्यक्-दर्शन को (झाणे झाइज्जइ) ध्यान में ध्याना चाहिये।

किं बहुणा भणिएण य जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं।73।।

अन्वयार्थः- (किं बहुणा भणिएण) बहुत कहने से क्या (जे णरवरा) जो श्रेष्ठ मनुष्य (गए काले सिद्धा) भूतकाल में सिद्ध हुये हैं और (जे वि भविया सिज्झिहहि) जो भव्य जीव भविष्यत् काल में सिद्ध होंगे (तं) उसको (सम्ममाहप्पं) सम्यक्त्व का माहात्म्य (जाणह) जानो।

ते धण्णा सुकियत्था ते सूरा ते वि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहि।।74।।

अन्वयार्थः– (ते धण्णा) वे धन्य हैं (ते सुकियत्था) वे पुण्यशाली हैं (ते सूरा) वे शूरवीर हैं और (ते वि पंडिया मणुआ) वे ही पण्डित बुद्धिमान मनुष्य हैं, (जे हि) जिन्होंने (सिद्धियरं) मोक्ष देने वाले (सम्मत्तं) सम्यक् दर्शन को (सिविणे वि णमइलियं) स्वप्न में भी मलिन नहीं किया।

हिंसा रहिए धम्मे अट्ठारह दोस वज्जिये देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं।।75।।

अन्वयार्थः– (हिंसा रहिए धम्मे) हिंसा से रहित धर्म में (अट्ठारह दोस) अठारह दोषों से (वज्जिए) रहित (देवे) देव में (णिग्गंथे पव्वयणे) निर्ग्रंथ गुरुओं एवं जिन प्रवचन, जिन वेद, शास्त्र में (सद्दहणं) श्रद्धान करना (सम्मत्तं होइ) सम्यक्-दर्शन होता है।

संवेओ णिव्वेओ णिंदा गरुहा य उवसमो भत्ती।
वच्छल्लं अणुकंपा अट्ठगुणा होंति सम्मत्ते।।76।।

अन्वयार्थः- (संवेओ) संवेग/संवेद (णिव्वेओ) निर्वेग/निर्वेद (णिंदा) निन्दा (गरुहा) गर्हा (उपसमो) उपशम (भत्ती) भक्ती (वच्छल्लं)

वात्सल्य/प्रेमभाव/स्नेह (य) और (अणुकंपा) करुणा ये (सम्मत्ते अट्ठगुणा होंति) सम्यक्त्व के आठ गुण होते हैं।

तं सम्मत्तं उत्तं जत्थ पयत्थाण होइ सद्दहणं।
परमप्पय कहियाणं परमप्पा दोस परिचित्तो।।77।।

अन्वयार्थः– (जत्थ) जिसमें (परमप्पय कहियाणं) अर्हंत परमात्मा के द्वारा कहे हुए (पयत्थाण) जीवादि पदार्थों का (सद्दहणं) श्रद्धान (होइ) होता है (तं सम्मत्तं उत्तं) उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं (परमप्पा दोस परिचित्तो) और वह परमात्मा अठारह दोषों से रहित होता है।

छुहतण्हाभयदोसो राओ मोहो जरा रुजा चिंता।
मच्चु खेओ सेओ अरइ मओ विम्हओ जम्मं।।78।।
णिद्दा तहा विसाओ दोसा एएहिं वज्जिओ अत्ता।
वयणं तस्स पमाणं सत्तच्चपयत्थयं जम्हा।।79।।

अन्वयार्थः– अर्हंत परमात्मा अठारह दोषों से रहित होते हैं। वे दोष इस प्रकार हैं-

(छुहतण्हाभय दोसो) भूख, प्यास, भय, द्वेष (राओ) राग, (मोहो) मोह, (जरा) बुढ़ापा, (रुजा) रोग, (चिंता) चिंता, (मच्चु) मृत्यु (खेओ) खेद, (सेओ) स्वेद/पसीना, (अरइ) अरति, (मओ) मद, (विम्हओ) विस्मय, (जम्मं) जन्म, (तहा णिद्दा) तथा निद्रा (विसाओ) विषाद, (एएहिं दोसा वज्जिओ) इन अठारह दोषों से रहित (अत्ता) आप्त हैं। (जम्हा) क्योंकि (सत्तच्चपयत्थयं) वे सत्यार्थ जीवादि सात तत्त्व और नौ पदार्थों के व्याख्यान कर्ता हैं। (तम्हा) अतः (तस्स वयणं पमाणं) उस आप्त के वचन प्रमाण हैं।

जीवाजीवा आसव बंध संवरो णिज्जरा तहा मोक्खो।
एयाणि सत्त तच्चा सद्दहणं तस्स सम्मत्तं।।80।।

अन्वयार्थः- (जीवाजीवा) जीव अजीव (आसव) आस्रव (बंध) बंध (संवरो) संवर (णिज्जरा) निर्जरा (तहा) तथा (मोक्खो) मोक्ष (एयाणि) ये (सत्त तच्चा) सात तत्त्व हैं, (तस्स) इनके (सद्दहणं) श्रद्धान को (सम्मत्तं) सम्यग्दर्शन

कहते हैं।

तेणुत्त णव पयत्था अण्णे पंचत्थि काय छद्दव्वा।
आणाए अधिगमेण य सद्दहमाणस्स सम्मत्तं।।81।।

अन्वयार्थः- (तेणुत्त णव पयत्था) उस आप्त के द्वारा कहे हुये नौ पदार्थों को (अण्णे) अन्य (पंचत्थिकाय) पंचास्तिकाय (छद्दव्वा) छह द्रव्यों को (आणाए अधिगमेण य) आप्त की आज्ञा और ज्ञान से (सद्दहमाणस्स) श्रद्धान करने वाले भव्य जीव के (सम्मत्तं) सम्यग्दर्शन होता है।

जो दुण करेदि कंखं कम्मफलेसु तह य सव्वधम्मेसु।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वं।।82।।

अन्वयार्थः- (जो कम्मफलेसु) जो कर्म के फलों में (तह) तथा (सव्वधम्मेसु) सब धर्मों में अर्थात् पुण्य के फलों में (कंखं ण करेदि) कांक्षा नहीं करता (सो) उस (चेदा) आत्मा को (णिक्कंखो) निःकांक्षित (सम्मादिट्ठी मुणेयव्वं) सम्यग्दृष्टि मानना चाहिये।

संकाइ दोस रहियं णिस्संकाइ गुण संजुयं परमं।
कम्मणिज्जरणहेउं तं सुद्धं होइ सम्मत्तं।।83।।

अन्वयार्थः– (संकाइ दोस रहियं) शंका-कांक्षा आदि दोषों से रहित (परमं) श्रेष्ठ (णिस्संकाइ) निःशंकादि (गुण संजुयं) गुणों से सहित (कम्मणिज्जरणहेउं) कर्मों की निर्जरा का कारण (तं) वह (सुद्धं) शुद्ध (सम्मत्तं होई) सम्यग्दर्शन होता है।

रायगिहे णिस्संको चोरो णामेण अंजणो भणिओ।
चंपाए णिक्कंखा वणिधूवा णंतमइ णामा।।84।।

अन्वयार्थः- (रायगिहे) राजगृही नगर में (अंजणो णामेण चोरो) अंजन नामक चोर (णिस्संको भणिओ) निःशंकित अंग में प्रसिद्ध कहा गया है। (चंपाए) चम्पानगरी में (णंतमइ णामा) अनंतमती नाम की (वणिधूवा) वणिक पुत्री (णिक्कंखा)

निःकांक्षित अंग में प्रसिद्ध हुई है।

णिव्विदिगिंछो राओ उज्जायणो णाम रउरवे णयरे।
रेवइ महुराणयरे अमूढ़ दिट्ठी मुणेयव्वा।।85।।

अन्वयार्थः– (रउरवे णयरे) रुद्रवर नगर में (उज्जायणो णाम राओ) उद्दायन नाम का राजा (णिव्विदिगिंछो) निर्विचिकित्सा अंग में प्रसिद्ध हुआ। (महुरा णयरे) मथुरा नगर में (रेवइ) रेवती रानी (अमूढ़ दिट्ठी मुणेयव्वा) अमूढ़ दृष्टि अंग में प्रसिद्ध जानना चाहिये।

ठिदि करण गुण पउत्तो मगहाणयरम्मि वारिसेणो हु।
हत्थिण पुरम्भि णयरे वच्छल्लं विण्हुणा रइयं।।86।।

अन्वयार्थः- (हु) और (मगहाणयरम्मि) मगध देश के राजगृह नगर में (वारिसेणो) वारिषेण नामक राजकुमार (ठिदिकरण गुणपउत्तो) स्थितिकरण गुण को प्राप्त हुआ। (हत्थिणपुरम्मि णयरे) हस्तिनापुर नाम के नगर में (विण्हुणा रइयं) विष्णु कुमार मुनि ने (वच्छल्लं) वात्सल्य गुण को प्रकट किया।

उवगूहण गुणजुत्तो जिणदत्तो तामलित्तणयरीए।
वज्जकुमारेण कया पहावणा चेव महुराए।।87।।

अन्वयार्थः- (तामलित्तणयरीए) ताम्रलिप्त नगरी में (जिणदत्तो) जिनदत्त सेठ (उवगूहण गुणजुत्तो) उपगूहन गुण से युक्त प्रसिद्ध हुआ। (चेव महुराए) और मथुरा नगरी में (वज्जकुमारेण) वज्रकुार ने (पहावणा कया) जिन शासन की प्रभावना की थी।

एरिसगुण अट्ठजुदं सम्मत्तं जो धरेइ दिढचित्तो।
सो हवइ सम्मदिट्ठी सद्दहमाणो पयत्थे य।।88।।

अन्वयार्थः- (एरिस अट्ठ गुण जुदं) इन पूर्वोक्त आठ गुणों से सहित (जो दिढचित्ते सम्मत्तं धरेइ) जो चित्त की दृढ़ता पूर्वक सम्यग्दर्शन को धारण करता है (य) और (सद्दहमाणो पयत्थे) भगवान जिनेन्द्र के द्वारा कहे हुये जीवादि पदार्थों का

श्रद्धान करता है (सो) वह (सम्मदिट्ठी हवइ) सम्यग्दृष्टि होता है।

एरिसगुण अट्ठजुदं सम्मत्तं विसोहिकारणा भणिया।
जो उज्जमेदि एदे सम्मादिट्ठी जिणक्खादो।।89।।

अन्वयार्थः– (एरिस गुण अट्ठजुदं सम्मत्तं) इन पूर्वोक्त निःशंकादि आठ गुणों से सहित सम्यग्दर्शन (विसोहि कारणा) विशुद्धि का कारण (भणिया) कहा गया है। (जो एदे उज्जमेदि) जो इनको उद्योतित करता है (सम्मादिट्ठी जिणक्खादो) उसे जिनेन्द्र भगवान ने सम्यग्दृष्टि कहा है।

बारह मिच्छावायइ तिहु देवह सतियाह सट्पुढ़वी।
सम्मत्तसिहुनहु उप्पत्ति नराइ संडे य णारी य।।90।
पंचवि थावर वियले असणि णिगोये य मिच्छकुभोगभूमिए।
सम्माइट्ठीजीवा ण हु जम्मंति कहिय मुणिणाहे।।91।।

अन्वयार्थः– (सम्मत्तसिहु) सम्यग्दृष्टि की (बारह मिच्छावायइ) मिथ्या वादों में (तिहु देवह) भवनवासी आदि तीन प्रकार के देवों में (सत्तियाहसट् पुढवी) सात नरक भूमियों में से प्रथम को छोड़कर नीचे की छह भूमियों में (नराइ) मनुष्यों में (णारी य) स्त्रियों में तथा (संडे) नपुंसकों में (हु) निश्चित (उप्पत्ति न) उत्पत्ति नहीं होती।

।।इति सम्यक्त्व प्रकरण।।

।। पूजा प्रकरण।।

पुण्णस्स कारणं फुडु पढमं ता होइ देवपूजा य।
कायव्वा भत्तीए सावयवग्गणे परमाए।।92।।

अन्वयार्थः- (य) तथा (देव पूजा) अर्हंत देव की पूजा श्रावकों के लिए (फुडु) स्पष्ट रूप से (पुण्णस्य पढमं कारणं) पुण्य का प्रथम कारण होती है, (ता) इसलिये (सावयवग्गेण) श्रावकों के समूह द्वारा (परमाए) परम (भत्तीए) भक्ति से

(कायव्वा) करना चाहिये।

फासुयजलेण ण्हाइय णिवसिय सुइवच्छगंपितं ठाणं।
इरियावहि पंच सोहिय उववेसिय पडिमासणेण।।93।।
उच्चारिऊण मंतं अहिसेयं कुणउ देवदेवस्स।
णीर घय खीर दहियं खिवेउ अणुकमेण जिणसीसे।।94।।

अन्वयार्थः- जिनेन्द्र देव का पूजक (फासुय जलेण) छने हुए शुद्ध प्रासुक जल से (ण्हाइय) स्नान करके (गंपितं ठाणं) गुप्त शुद्ध स्थान में (सुइवच्छ) शुचि वस्त्रों को (णिवसिय) पहनकर (इरिया वहि पंच सोहिय) ईर्या पथ आदि पंच शुद्धि करके (उववेसिय) बैठकर या (पडिमासणेण) प्रतिमासन/खड्गासन से-

(मंतं उच्चारिऊण) मंत्रों का उच्चारण करते हुये (देवदेवस्स) देवों के देव जिनेन्द्रदेव का (अहिसेयं) अभिषेक (कुणउ) करें। (जिण सीसे) जिनेन्द्र भगवान के सिर पर (अणुकमेण) अनुक्रम से (णीर) सुरभित दिव्य जल (घय) शुद्ध दिव्य घृत (खीर) शुद्ध दिव्य दूध (दहियं) शुद्ध दिव्य दही की (खिवेउ) धारा देना चाहिये।

न्हवणं काऊण पुणो अमलं गंधो य पंच वि दित्ता।
सवलहणं च जिणिंदे कुणोज्ज कास्मीर मलएहिं।।95।।

अन्वयार्थः– (न्हवणं काऊण) अभिषेक करके (पुणो) फिर (अमलं) निर्मल (पंच गंधो वि दित्ता) पंच गंध भी देना चाहिये अर्थात् फिर पंच गंध से अभिषेक करना चाहिये (य) और (कास्मीर) कश्मीरी (मलएहिं) केशर से (जिणिंदे) जिनेन्द्र भगवान पर (सवलहणं च) विलेपन भी (कुणोज्ज) करना चाहिये।

इय संखेवं कहियं जो पुज्जइ गंधधूवदीवेहिं।
कुसुमेहिं जवइ णिच्चं सो हणइ पुराकयं पावं।।96।।

अन्वयार्थः- (इय) यहाँ (संखेवं) संक्षेप से पूजा की विधि (कहियं) कही गई (जो गंध धूव दीवेहिं पुज्जइ) जो गंध धूप और दीपों के द्वारा जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता है और (कुसुमेहिं) फूलों के द्वारा (णिच्चं) हमेशा/सदा जिनेन्द्र भगवान को (जवइ) जपता है (सो) वह (पुराकयं) पूर्वकृत (पावं) पापों को (हणइ) नष्ट करता है।

जलधाराणिक्खेवेण पावमलं सोहणं हवे णियमं।
चंदणलेवेण नरो जायइ सोहग्ग संपण्णो।।97।।

अन्वयार्थः- (जलधाराणिक्खेवेण) जिनेन्द्र भगवान के ऊपर जलधारा करने से (णियमं) नियम से (पावमलं) पाप रूपी मल का (सोहणं) शोधन (हवे) होता है। (चंदणलेवेण) जिनेन्द्र भगवान के ऊपर चन्दन का लेपन करने से (नरो) मनुष्य (सोहग्ग संपण्णो) सौभाग्य सम्पन्न (जायइ) होता है।

चंदनसुयंधलेवो जिणवरचरणेसु कुणइ जो भविओ।
लहइ तणुं विक्किरियं सहावसुयंधयं धवलं।।98।।

अन्वयार्थः- (जो भणिओ) जो भव्य जीव (जिणवरचरणेसु) जिनेन्द्र भगवान के चरणों में (चंदन सुयंधलेवो) चन्दन सुगन्ध का लेप (कुणइ) करता है, वह (सहाव सुयंधयं धवलं) स्वभाव से सुगंधित सफेद (विक्किरियं तणुं) वैक्रियक शरीर (लहइ) को प्राप्त करता है अर्थात् उत्तम वैमानिक देव होता है।

जायदि अक्खयणि रयण सामिओ अक्खएहिं अक्खोहो।
अक्खीणलद्धिजुत्तो अक्खयसोक्खं च पावेइ।।99।।

अन्वयार्थः– (अक्खएहिं) अक्षतों से जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने वाला (अक्खयणि रयण सामिओ) अक्षय नौ निधि और चौदह रत्नों का स्वामी चक्रवर्ती होता है। (अक्खोहो) क्षोभ रहित अर्थात् रोग शोक रहित निर्भय रहता है (च) और (अक्खीणलद्धिजुत्तो) अक्षीण ऋद्धि से युक्त होकर (अक्खय सोक्खं) अक्षय सुख अर्थात् मोक्ष को (पावेइ) पाता है।

कुसुमेहिं कुसेसय वयण तरुणि जण णयण कुसुम वरमाला।
बलए णच्चिय देहो जायइ कुसुमाउहो चेव।।100।।

अन्वयार्थः– (कुसुमेहिं) पुष्पों से जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने वाला (कुसेसय वयण) कमल के समान सुन्दर मुख वाली (तरुणिजण णयण) तरुणीजनों के नेत्र रूपी (कुसुम वरमाला) पुष्पों की सुन्दर श्रेष्ठ माला (बलएणच्चियदेहो) के समूहों से पूजित है शरीर जिसका, ऐसा (कुसुमाउहो) कामदेव (जायइ) होता है।

जायइ णिविज्जदाणिहिं संतिगोकंतितेय संपण्ण।
लायण्ण जलहि वेलातरंगितं पाविय सरीरो।।101।।

अन्वयार्थः- (णिविज्जदाणिहिं) जिनेन्द्र भगवान को नैवेद्य समर्पित करने से, (संतिगोकंतितेय संपण्ण) शांत है किरणें जिसकी, ऐसे चन्द्रमा के समान धवल और तेज से सम्पन्न तथा (लावण्ण जलहि बेलातरंगितं) सौन्दर्य रूपी समुद्र की बेला (तट) वर्ती तरंगों से संप्लावित (सरीरो पाविय) शरीर को प्राप्त करता है अर्थात् अति सुन्दर होता है।

दीवेहिं दीवियासेस जीव दव्वाइं तच्च सब्भावो।
सब्भाव जणिय केवलपईव तेएण होइ णरो।।102।।

अन्वयार्थः- (णरो) जो मनुष्य (दीवेहिं) दीपों के द्वारा जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता है (सब्भाव जणिय) वह सद्भाव के योग से उत्पन्न हुये (केवल पईवतेएण) केवलज्ञान रूपी प्रदीप के तेज से (दीवियासेस जीव दव्वाइं तच्चसब्भावो) प्रकाशित किया है समस्त जीवादि द्रव्य व तत्त्व के सद्भाव को जिसने, ऐसा केवल ज्ञानी (होई) होता है।

धूवेण सिसिरकरधवल कित्तिधवलिय जयत्तओ पुरिसो।
जाइइ फलेण संपत्त पंचम णिव्वाण सोक्ख फलो।।103।।

अन्वयार्थः– (धूवेण) धूप से जिनेन्द्र भगवान की पूजन करने वाला पुरुष (सिसिरकर धवल कित्ति धवलिय जयत्तओ) चन्द्रमा के समान सफेद कीर्ति से व्याप्त किया है जगत्त्रय को जिसने अर्थात् त्रैलोक्य व्यापी यश वाला होता है। (फलेण) फलों से पूजन करने वाला मनुष्य (परम णिव्वाण) परम निर्वाण की (संपत्त सोक्ख फलो) सम्पत्ति रूप सुख के फल को (जाइइ) प्राप्त करने वाला होता है।

घंटाहिं घंटा सद्दाउलेसु पवरच्छराण मज्झम्मि।
संकीडइ सुर संघाय सेविओ वर विमाणेसु।।104।।

अन्वयार्थः- (घंटाहिं) जिन मंदिर में घंटा दान करने से घंटा दान करने वाला पुरुष (घंट सद्दाउलेसु) घंटा के शब्द से आकुलित व्याप्त (पवरच्छराण

मज्झम्मि) श्रेष्ठ अप्सराओं के मध्य में (सुर संघाय सेविओ) देवों के समूह से सेवित (वर विमाणेसु) श्रेष्ठ विमानों में (संकीडइ) अद्भुत क्रीडाएँ करता है।

छत्तेहिं एयछत्तं भुंजइ पुहवी सवत्त परिहीणो।
चामर दाणेण तहा विज्जिज्जइ चमरणिवहेहिं।।105।।

अन्वयार्थः– (छत्तेहिं) जिनेन्द्र भगवान के ऊपर छत्र चढ़ाने से मनुष्य (सवत्त परिहीणो) सपत्न रहित, प्रतिपक्षी शत्रु रहित (एयछत्रं) एक छत्र (पुहवीं) पृथ्वी को (भुंजइ) भोगता है (तहा) तथा (चामरदाणेण) चंवरों के दान से (चमर णिवेहेहिं) चंवरों के समूह द्वारा (विज्जिज्जइ) वीजित होता है अर्थात् उसके ऊपर चंवर ढोरे जाते हैं।

अहिसेयफलेण णरो अहिसिंचिज्जइ सुदंसणस्सुवरि।
खीरोयजलेण सुरिंदप्प मुह देवेहिं भत्तीए।।106।।

अन्वयार्थः- (अहिसेयफलेण णरो) जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करने के फल से मनुष्य (सुरिंदप्प मुहदेवेहिं) सौधर्म आदि प्रमुख देवेन्द्रों के द्वारा (भत्तीए) भक्तिपूर्वक (सुदंसणस्सुवरि) सुदर्शनादि सुमेरु पर्वत के ऊपर (खीरोयजलेण) क्षीर सागर के जल से (अहिसिंचिज्जइ) अभिषिक्त किया जाता है।

विजयपडाएहिं णरो संगामे सुविजइओ होइ।
छक्खंडविजयणाहो णिप्पडिवक्खो यसस्सी य।।107।।

अन्वयार्थः– (विजय पडाएहिं) जिन मन्दिर पर विजय पताकाओं के चढ़ाने से (णरो) मनुष्य (संगामे सुविजइओ) संग्राम में विजयी (होइ) होता है (य) और (णिप्पडिवक्खो) प्रतिपक्षी शत्रुरहित होकर (छक्खंड विजयणाहो) षट्खण्ड पृथ्वी का विजयी स्वामी और (यसस्सी) यशस्वी होता है।

कुत्थुं भरिदलमेत्ते जिणभवणे जो ठवेइ जिणपडिमं।
सरिसवमेत्तं लहइ सो वि णरो तित्थयरं पुण्णं।।108।।

अन्वयार्थः- (जो णरो) जो मनुष्य (कुत्थुंभरिदलमेत्ते) कुन्दरु के पत्ते

(धनिया की पत्ती/समार) के बराबर (जिण भवणे) जिनालय में (सरिसवमेत्तं) सरसों के बराबर (जिन पडिमं) जिन प्रतिमा को (ठवेइ) स्थापित करता है (सो) वह (वि) भी (तित्थयरं पुण्णं) तीर्थंकर नाम पुण्य कर्म को (लहइ) प्राप्त करता है।

जो पुणु जिणिंदभवणं समुण्णयं परिहि तोरण समग्गं।
णिम्मावइ तस्सफलं को सक्कइ वण्णिउं सयलं।।109।।

अन्वयार्थः- (पुणुजो) फिर जो (समुण्णयं) ऊँचे (परिहि तोरण समग्गं) कोट और तोरण द्वारों से सहित (जिणिंदभवणं) जिनमंदिर का (णिम्मावइ) निर्माण करवाता है (तस्स सयलं फलं) उसके सम्पूर्ण फल का (वण्णिउ) वर्णन करने के लिये (को सक्कइ) कौन समर्थ है? अर्थात् कोई भी नहीं।

जो पुज्जइ अणवरयं पावं णिद्दहइ आसिभवबद्धं।
पडिदिणकयं च विहुणइ बंधइ पवराइं पुण्णाइं।।110।।

अन्वयार्थः– (जो अणवरयं) जो मनुष्य निरंतर जिनेन्द्र भगवान की (पुज्जइ) पूजा करता है वह पुरुष (आसिभव बद्धं पावं) पूर्व भवों में बांधे हुये पाप कर्मों को (णिद्दहइ) जलाता है (च) और (पडिदिणकयं) प्रतिदिन किये हुये पापों को (विहुणइ) नष्ट करता है (पवराइं) प्रकृष्ट (पुण्णाइं) पुण्य कर्मों को (बंधइ) बांधता है।

किं जंपिएण बहुणा तीसुवि लोएसु किं पि जं सुक्खं।
पुज्जाफलेण सव्वं पाविज्जइ णत्थि संदेहो।।111।।

अन्वयार्थः- (बहुणा जंपिएण किं) बहुत कहने से क्या (तीसुवि लोए सु) तीनों लोकों में (जं किं पि सुक्खं) जो कुछ भी सुख हैं (सव्वं) वे सब (पुज्जाफलेण) पूजा के फल से (पाविज्जइ) प्राप्त होते हैं (संदेहो णत्थि) इसमें संदेह नहीं है।

एयारसंगधारी जीहसहस्सेण सुरवरिंदो वि।
पुज्जाफलं ण सक्कइ णिस्सेसं वण्णिउं जम्हा।।112।।

अन्वयार्थः– (जम्हा) क्योंकि (एयार संगधारी) एकादश अंगों मय

श्रुतज्ञान धारी (सुरवरिंदो) देवेन्द्र (वि) भी (जीहसहस्सेण) हजारों जिह्वाओं से (णिस्सेसं) सम्पूर्ण (पुज्जाफलं) पूजा के फल को (वण्णिउं) वर्णन करने के लिये (ण सक्कइ) समर्थ नहीं है।

।।इति पूजा प्रकरण।।

विनय प्रकरण

दंसण णाण चरित्ते तवोवयारं पि पंच विह विणओ।
पंचम गइ गमणठ्ठं कायव्वो देसविरएण।।113।।

अन्वयार्थः- (देसविरएण) देशव्रती श्रावक को (पंचम गइ गमणठ्ठं) पंचम गति मोक्ष की प्राप्ति के लिये (दंसण णाण चरित्ते) दर्शन-ज्ञान-चारित्र मय (पि) तथा (तवोवयारं) तप और उपचार रूप (पंच विह विणओ) पाँच प्रकार की विनय (कायव्वो) करना चाहिये।

णिस्संकिय संवेगाइ जे गुणा वण्णिया मए पुव्वं।
तेसिम् अणुपालणं जं वियाण सो दंसणो विणओ।।114।।

अन्वयार्थः- (णिस्संकिय संवेगाइ) निःशंक आदि तथा संवेग आदि (जे गुणा) जो गुण (मए) मुझ ग्रन्थकर्ता।। आचार्य वसुनन्दि।। के द्वारा (पुव्वं) पहले सम्यक्त्व प्रकरण में (वण्णिया) वर्णन किये हैं (तेसिम) उनका (जं अणुपालणं) जो अनुपालन है (सो) उसे (दंसणो विणओ) दर्शन विनय (वियाण) जानना चाहिये।

णाणे णाणुवयरणे य णाणजुत्तम्मि तह य भत्तीए।
जं पडिचरणं कीरइ णिच्चं तं णाणविणओ हु।।115।।

अन्वयार्थः- (णाणे) ज्ञान में (य) और(णाणुवयरणे) ज्ञान के उपकरणों में अर्थात् शास्त्र, चौरंग, फलक आदि (तह) तथा (णाणजुत्तम्मि) ज्ञान से युक्त ज्ञानी पुरुषों में (भत्तीए) भक्ति पूर्वक (जं णिच्चं पडिचरणं) जो सदा सेवा सुश्रुषा (कीरइ) की जाती है (तं) उसे (हु) नियम से (णाणविणओ) ज्ञान विनय जानना चाहिये।

पंचविहं चारित्तं अहियारा जे य वण्णिया तस्स।
जं तेसिं बहुमाणं वियाण चारित्तविणओ सो।।116।।

अन्वयार्थः- (पंच विहं चारित्तं) पाँच प्रकार का चारित्र सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय और यथाख्यात चारित्र (य) और (तस्स) उस चारित्र के (जे अहियारा वण्णिया) जो अधिकार वर्णन किये गये हैं (जं) जो (तेसिं) उनका (बहुमाणं) बहुमान करता है, (सो) उसे (चारित्त विणओ) चारित्र विनय (वियाण) जानो।

बालोऽयं बुढ्ढोऽयं संकप्पं विज्जिऊण तवसीणं।
जं पणिवायं कीरइ तवविणयं तं वियाणीहि।।117।।

अन्वयार्थः– (अयं बालो) यह बालक है (अयं बुढ्ढो) यह वृद्ध है (संकप्पं विज्जिऊण) इस प्रकार के संकल्प को छोड़ कर (तवसीणं) तपस्वियों के (जं पणिवायं) कष्टों का निवारण करने के लिये जो सेवा सुश्रुषा (कीरइ) की जाती है (तं) उसे (तव विणयं) तप विनय (वियाणीहि) जानना चाहिये।

उवयारओ वि विणओ मण वय कायेण होइ तिवियप्पो।
सो पुण दुविहो णेओ पच्चक्ख परोक्ख भेएण।।118।।

अन्वयार्थः– (उवयारओ विणओ वि) उपचार विनय भी (मणवयकायेण) मन-वचन-काय से (तिवियप्पो) तीन प्राकर की (होइ) होती है (पुण) पुनः (सो) वह (पच्चक्खपरोक्खभेएण) प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से (दुविहो) दो प्रकार की (णेओ) जानना चाहिये।

जं दुप्परिणामाओ मणं णियत्ताविऊण सुहयोगे।
ठाविज्जइ सो विणयो जिणेहि माणस्सिओ भणिओ।।119।।

अन्वयार्थः– (जं) जो (मणं) मन को (दुप्परिणामाओ) खोटे भावों से (णियत्ताविऊण) हटाकर (सुहयोगे ठाविज्जइ) शुभ योग में स्थापित करता है, (सो) उसे (जिणेहि) जिनेन्द्र भगवान ने (माणस्सिओ विणयो) मानसिक विनय (भणिओ) कहा है।

हियमियपुज्जं सुत्ताणुवीचि अफरुसमकक्कसं वयणं।
संजमिजणम्मि जं चाडुभासणं सो वाचिओ विणओ।।120।।

अन्वयार्थः- (हिय मिय पुज्जं) हित-मित पूज्य (सुत्ताणुवीचि) शास्त्र की परम्परा के अनुसार (अफरुसमकक्कसं) कोमल कर्कषता रहित मधुर सम्भाषण (संजमिणम्मि) संयमीजनों के प्रति किया जाता है (सो) उसे (वचिओ) वाचनिक (विणओ) विनय कहते हैं।

कायाणुरू वमद्दणकरणं कालाणुरूवपडिचरणं।
संथारभणियकरणं उवकरणाणं व पडिलिहणं।।121।।

अन्वयार्थः– (कायाणुरुवमद्दणकरणं) शरीर के अनुरूप मर्दन (मालिश) करना (कालाणुरूवपडिचरणं) काल व ऋतु के अनुरूप परिचर्या करना (संथारभणियकरणं) संस्तर घास चटाई लगा देना (च) और (उवकरणाणं) उपकरणों का (पडिलिहणं) शोधन (साफ-स्वच्छ) कर देना।

इच्चेवमाइ काइयविणओ रिसि सावयाण कायव्वो।
जिणवयणमणुगणंतेण देसविरएण जहाजोग्गं।।122।।

अन्वयार्थः- (इच्चेवमाइ) इत्यादि पूर्व गाथा में कथित कार्यों को लेकर (रिसिसावयाण) ऋषि (मुनि) और श्रावकों की, (जिणवयणमणुगणंतेण) जिनेन्द्र भगवान के वचनों का अनुसरण करने वाले (देसविरएण) देशव्रती श्रावकों को (जहाजोग्गं) यथा योग्य (काइय विणओ) कायिक विनय (कायव्वो) करना चाहिये।

इति पच्चक्खा एसो भणिदो गुरुणा विणा विआणाए।
अणुवट्टज्जदि जं तं परुक्खविणओ त्ति विण्णेओ।।123।।

अन्वयार्थः- (इति) इस प्रकार (पूर्व गाथा में कथित) काय विनय को (पच्चक्खा) प्रत्यक्ष विनय (भणिदो) कहा है (गुरुणा विआणाए विणा) गुरु के न होने पर भी गुरु की आज्ञा से (जं) जब (अणुवट्टज्जदि) गुरु के अनुकूल चर्या करता है

या अनुकरण करता है (तं) उसे (परुक्खविणओत्ति) परोक्ष विनय है, इस प्रकार (विण्णेओ) जानना चाहिये।

अमयसमो णत्थि रसो ण तरु कप्पदुमेण परितुल्लो।
विणयसमो णत्थि गुणो ण मणि चिंतामणि सरिसो।।124।।

अन्वयार्थः- (अमयसमो णत्थिरसो) अमृत के समान कोई रस नहीं है, (कप्पदुमेण) कल्पवृक्ष के (परितुल्लो) समान (तरुण) अन्य वृक्ष नहीं है, (चिंतामणि सरिसो मणि ण) चिंतामणि रत्न के समान अन्य कोई रत्न नहीं है इसी प्रकार (विणयससो णत्थि गुणो) विनय गुण के समान अन्य कोई गुण नहीं है अर्थात् विनय गुण सर्व गुणों में श्रेष्ठ है।

विणएण ससंकुज्जलजसोहधवलियदियंतओ पुरिसो।
सव्वत्थ हवइ सुहओ तहेव आदिज्जुवयणो य।।125।।

अन्वयार्थः- (विणएण) विनय से (पुरिसो) पुरुष (ससंकुज्जल) चन्द्रमा के समान उज्ज्वल (जसोह धवलिय दियंतओ) यश के समुदाय से धवलित किया है दिशाओं के अन्तराल को जिसने, ऐसा यशस्वी होता है तथा (सव्वत्थ सुहओ हवइ) उसके लिए सभी पदार्थ सुखद होते हैं (तहेव) उसी तरह (आदिज्जवयणो) उसके वचन सभी को ग्राह्य होते हैं, अर्थात् विनयी पुरुष के वचन सभी लोग स्वीकार करते हैं।

जे केइ वि उवएसा इह परलोए सुहावहा संति।
विणएण गुरुजणाणं सव्वे पाउणइ ते पुरिसो।।126।।

अन्वयार्थः- (इह परलोए) इस लोक और परलोक में (जे केइ वि) जो कोई भी (सुहावहा) सुख को उत्पन्न करने वाले (उवएसा) उपदेश (संति) हैं (ते सव्वे) वे सब (पुरिसो) पुरुष को (गुरुजणाणं विणएण) गुरुजनों की विनय से (पाउणइ) प्राप्त होते हैं।

देविंद चक्क हरमंडलीय रायाइ जं सुहं लोए।
तं सव्वं विणय फलं णिव्वाण सुहं तहच्चेव।।127।।

अन्वयार्थः- (लोए) लोक में (देविंद चक्क हर मंडलीय रायाइ) देवेन्द्र चक्रवर्ती मंडलीक राजादिक का (जं) जो (सुहं) सुख है (तं सव्वं) वह सब (विणय फलं) विनय का फल है (तहच्चेव) इसी प्रकार (णिव्वाण सुहं) निर्वाण सुख को भी विनय का फल जानना चाहिये।

सत्तू वि मित्तभावं जम्हा उवयाइ विणयसीलस्स।
विणओ तिविहेण तओ कायव्वो देसविरएण।।128।।

अन्वयार्थः- (विणयसीलस्स) विनयशील पुरुष के (सत्तुवि) शत्रु भी (मित्त भावं) मित्रभाव को (उवयाइ) प्राप्त हो जाता है (जम्हा) इसलिये (देसविरएण) देशव्रती श्रावक को (तिविहेण) मन-वचन-काय तीनों योगों से (विणओतओ) विनय तप (कायव्वो) करना चाहिये।

।।इति विनय प्रकरण।।

वैय्यावृत्य प्रकरण

अइबाल बुड्ढ रोगाभिभूयतणु किलेस सत्ताणं।
चाउव्वण्णे संघे जहजोग्गं तह मणुण्णाणं।।129।।

अन्वयार्थः- (अइबाल बुड्ढ रोगाभिभूयतणु किलेस सत्ताणं) अति बालक अति वृद्ध रोग से व्याप्त/पीड़ित काय क्लेश से संतप्त शरीर वाले (चाउव्वण्णे संघे) चातुर्वर्ण संघ में।। ऋषि, मुनि, यति, अनगार।। (तह) तथा (मणुण्णाणं) मनोज्ञ अर्थात् लोक में प्रभावशाली साधु या श्रावकों का (जहजोग्गं) यथा योग्य।

कर चरण पिट्ठ सिरसामणद्दणअब्भंगसेवकिरियाहि।
उव्वत्तण परियत्तण पसारणा कुंचणाईहिं।।130।।

अन्वयार्थः- (कर चरण पिट्ठ सिरसा मणद्दण) हाथ, पैर, पीठ, सिर आदि का मर्दन करना, दबाना (अब्भंगसेवकिरियाहि) मालिश करना, सेंक करना आदि क्रियाओं के द्वारा और (उव्वत्तण परियत्तण पसारणा कुंचणाईहिं) उठना-बैठना, करवट बदलना, हाथ पैर आदि अंगों को फैलवाना, सुकड़वाना आदि

के द्वारा-

पडिजग्गणेहिं तणुयोगभत्तपाणेहिं भेसजेहिं तहा।
उच्चाराईणिक्खे वणेहिं तणुधोवणेहिं च।।131।।

अन्वयार्थः- (पडिजग्गणेहिं) जागरण के द्वारा, (तणुयोगभत्तपाणेहिं) शरीर के योग्य आहार पानी के द्वारा (तह) तथा (भेसजेहि) औषधियों के द्वारा, (उच्चाराईणिक्खेवणेहिं) मल मूत्र आदि के फेंकने के द्वारा (च) और (तणुधोवणेहिं) शरीर को धोने के द्वारा-

संथारसोहणेहि य वेइयावच्चं सया पयत्तेण।
कायव्वं सत्तीए णिव्विदिगिच्छेण भावेण।।132।।

अन्वयार्थः- (य) और (संथारसोहणेहि) संस्तर ।।बिछौना।। शोधन के द्वारा, (णिव्विदिगिच्छेण भावेण) ग्लानिरहित निर्विचिकित्सा भाव से (सत्तीए) अपनी शक्ति अनुसार (सयापयत्तेण) सदा प्रयत्न पूर्वक (वेइयावच्चं) वैयावृत्य (कायव्वं) करना चाहिये।

णिस्संकियसंवेगाई जे गुणा वण्णिदा गुणोविसया।
ते होंति पायडा पुण विज्जावच्चं कुणंतस्स।।133।।

अन्वयार्थः- (पुण) पुनः (णिस्संकिय) निःशंकित आदि और (संवेगाई) संवेग आदि (जे गुणोविसया) जो गुण विशेष पहले वर्णन किये गये हैं (ते) वे सब गुण (विज्जावच्चं कुणंतस्स) वैयावृत्य करने वाले जीव के (पायडा होंति) प्रकट होते हैं।

देह तव णियम संजम सील समाही य अभयदाणं च।
गइ मइ बलं व दिण्णं वैयावच्चं करंतेण।।134।।

अन्वयार्थः- (वैयावच्चं करंतेण) वैयावृत्य करने वाले श्रावक के द्वारा (देह) शरीर (तव) तपस्या (णियम) नियम (संजम) संयम (सील) शील (समाही) समाधि ।।ध्यान।। (च) और (अभयदाणं) अभयदान (च) तथा (गइ) गति (मइ) मति (च) और (बलं) बल (दिण्णं) दिया जाता है।

सुभपरिणामो जायइ जिणिंदआणा य पालिया होइ।
जिणसमयतिलयभूओलब्भइ यत्तो वि गुणरासी।।135।।

अन्वयार्थः- वैयावृत्य करने से (सुभपरिणामो जायइ) शुभ परिणाम होते हैं। (य) और (जिणिंदआणा पालिया होइ) जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का परिपालन होता है, (जिणसमयतिलयभूओ) जिनेन्द्र भगवान के मत का तिलक भूत ।।प्रधान।। होता है, (अयत्तो वि) और प्रयत्न के बिना भी (गुणरासी) गुणों का समूह (लब्भइ) प्राप्त करता है।

भमइ जए जसकित्ती सज्जण सुह हियय णयण सुहजणणी।
अण्णे वि य होंति गुणा विज्जावच्चेण इह लोए।।136।

अन्वयार्थ– (सज्जणसुह हियय णयण सुहजणणी) सज्जन पुरुषों के कान, हृदय, नेत्र सुख देने वाली (जसकित्ती) उसकी यशकीर्ति (जए) जग में (भमइ) फैलती है (या) और (इहलोए) इस लोक में (विज्जावच्चेणं) वैयावृत्य से, (अण्णे वि) अन्य भी (गुणा होंति) बहुत से गुण प्राप्त होते हैं।

परलोगे वि सरूओ चिराउगो रोय सोय परिहीणो।
बल तेज सत्त जुत्तो जाइय अखिलप्पभाओ य।।137।।

अन्वयार्थः- वैयावृत्य के फल से (परलोगे वि) परलोक में भी जीव (सरूओ) सुरूपवान (चिराउगो) चिरायु, (रोय सोय परिहीणो) रोग शोक से रहित (बल तेज सत्त जुत्तो) बल, तेज और सत्व से युक्त (य) तथा (अखिलप्पभाओ) पूर्ण प्रतापी (जाइय) होता है।

जल्लोसहि सव्वोसहि अक्खीणमहाणसाइ रिद्धीओ।
अणिमाइ गुणा य तहा विज्जावच्चेण पाउणइ।।138।।

अन्वयार्थः- (विज्जावच्चेण) वैयावृत्य करने से (जल्लोसहि) जल्लौषधि (सव्वोसहि) सर्वौषधि (य) और (अक्खीण महाणसाइ रिद्धीओ) अक्षीण महानस आदि ऋद्धियों (तहा) तथा (अणिमाइ गुणा) अणिमा आदि अष्ट गुण (पाउणइ) प्राप्त करता है।

किं जंपिएण बहुणा तिलोयसंखोहकारयमहंतं।
तित्थयरणामपुण्णं विज्जावच्चेण अज्जेदि।।139।।

अन्वयार्थः- (बहुणा जंपिएण किं) बहुत कहने से क्या (विज्जावच्चेण) वैयावृत्य करने से यह जीव (तिलोयसंखोहकारयमहंतं) तीन लोक में संक्षोभ अर्थात् हर्ष और आश्चर्य को करने वाला महान (तित्थयरणामपुण्णं) तीर्थंकर नामक पुण्य को (अज्जेदि) उपार्जित करता है।

तरूणि जण णयण मण हारि रूव बल तेज सत्त संपण्णो।
जाओ वेज्जावच्चं पुव्वं काऊण वसुदेवो।।140।।

अन्वयार्थः- (वसुदेवो) वसुदेव का जीव (पुव्वं) पूर्व भव में (वेज्जावच्चं) वैयावृत्य (काऊण) करके (तरुणि जण मण हारि रूप बल तेज सत्त संपण्णो) तरुणीजनों के नयन और मन को हरण करने वाले रूप, बल, तेज और सत्व से सम्पन्न (वसुदेवो जाओ) वसुदेव नाम का कामदेव हुआ।

वारवईए विज्जावच्चं किच्चा असंजदेणावि।
तित्थयरणामपुण्णं समज्जियं वासुदेवेण।।141।।

अन्वयार्थः- (वारवईए) द्वारकावती नगरी में (असंजदेणावि) व्रत संयम से रहित असंयत (वासुदेवेण) वासुदेव श्री कृष्ण ने (विज्जावच्चं किच्चा) वैयावृत्य करके (तित्थयरणामपुण्णं) तीर्थंकर नाम पुण्य प्रकृति का (समज्जियं) समार्जन/उपार्जन किया।

एव णाऊण फलं वेयावच्चस्स परमभत्तीए।
णिच्छयजुत्तेण सया कायव्वं देसविरएण।।142।।

अन्वयार्थः- (एव) इस प्रकार (वेयावच्चस्स) वैयावृत्य के फल को (णाऊण) जानकर (णिच्छयजुत्तेण) दृढ़ निश्चय होकर (परमभत्तीए) परम भक्ति के साथ (देसविरएण) देशव्रती श्रावक को (सया) सदा वैयावृत्य (कायव्वं) करनी चाहिये।

।।इति वैय्यावृत्य प्रकरण।।

श्रावक स्थान प्रकरण

पंचुंबर सहियाइं सत्त वि विसणाइं जो विवज्जेदि।
सम्मत्त विसुद्धमई सो दंसणसावओ भणिओ।।143।।

अन्वयार्थः- (जो सम्मत विसुद्ध मई) जो सम्यक् दर्शन से विशुद्ध बुद्धि वाला (पंचुंबर सहियाइं) पाँच उदुम्बर फलों से सहित (सत्त वि विसणाइं) सातों ही व्यसनों को (विवज्जेदि) त्यागता है (सो दंसणसावओ भणिओ) वह प्रथम प्रतिमा धारी, दर्शन श्रावक कहा गया है।

उंबर बट पिप्पल पिंपरीय संधाणतरुपसूणाइं।
णिच्चं तससिद्धाइं ताइं परिवज्जियव्वाइं।।144।।

अन्वयार्थः- (उंबर बट पिप्पल पिंपरीय) ऊमर, बड़, पीपल, कटुमर और पाकर ये पाँच उदुम्बर फल तथा (संधाणतरु- पसूणाइं) संधानक ।।अचार।। और कुछ वृक्षों के फूल (णिच्चंतससिद्धाइं) जो निरन्तर त्रस जीवों से व्याप्त रहते हैं, इसलिये (ताइं) ये सब (परिवज्जियव्वाइं) छोड़ने योग्य हैं।

जूयं मज्जं मंसं वेसा पारिद्धि चोर परयारा।
दुग्गइगमणस्सेदाणि हेउभुयाणि पावाणि।।145।।

अन्वयार्थः- (जूयं) जूआ (मज्जं) मद्य, शराब (मंसं) माँस (वेसा) वेश्या (पारिद्धि) शिकार (चोर परयारा) चोरी, परस्त्री सेवन (एदाणि) ये सातों व्यसन (दुग्गइं गमणस्सेदाणि हेउभूयाणि) दुर्गति गमन के कारण भूत (पावाणि) पाप हैं।

रज्जब्भंसं वसणं बारहसंवच्छराणि वणवासे।
पत्तो तहावमाणं जूएण जुहिट्ठिलो राया।।146।।

अन्वयार्थः- (जूएण) जूआ खेलने से (जुहिट्ठलो राया) राजा युधिष्ठिर (रज्जब्भंसं) राज्य से भ्रष्ट होते हुये (बारहसंवच्छराणि) बारह वर्ष तक (वणवासे) वनवास में रहकर (तहा) तथा (अवमाणं पत्तो) अपमान को प्राप्त हुये।

उज्जाणम्मि रमंता तिसाभिभूया जलं त्ति णाऊण।
पिविऊण जुण्णमज्जं णट्ठा ते जादवा तेण।।147।।

अन्वयार्थः- (उज्जाणम्मि रमंता) उद्यान में क्रीड़ा करते हुये (तिसाभिभूया) प्यास से पीड़ित होकर (जादवा) यादव कुमार (जुण्णमज्जं) पुरानी शराब को (जलं त्ति णाऊण) यह जल है ऐसा जान (पिविऊण) पीकर (तेण) उससे वे (णट्ठा) नष्ट हो गये।

मंसासणेण गिद्धो वग रक्खो एय चक्क णयरम्मि।
रज्जाओ पब्भट्ठो अयसेण मओ गओ णिरयं।।148।।

अन्वयार्थः- (य) तथा (एय चक्क णयरम्मि) एक चक्र नामक नगर में (मंसा सणेण) माँस खाने में आसक्त (वग-रक्खो) वक राक्षस (रज्जाओ) राज पद से (पब्भट्ठो) भ्रष्ट होकर (अयसेणमओ) अपयश से मरकर (णिरयं गओ) नरक गया।

सव्वत्थणिउणबुद्धि वेसासंगेण चारुदत्तो वि।
खइऊण धणं पत्तो दुक्खं परदेसगमणं च।।149।।

अन्वयार्थः- (सव्वत्थणिउणबुद्धि) सब विषयों में निपुण, बुद्धिमान (चारुदत्तो वि) चारुदत्त ने भी (वेसासंगेण) वेश्या की संगति से (धणं खइऊण) धन को खोकर (दुक्खं पत्तो) दुःख को पाया (च परदेसगमणं) और परदेश जाना पडा।

होऊण चक्कवट्ठी चउदसरयणाहिवो वि संपत्तो।
मरिऊण बंभदत्तो णिरयं पारद्धिरमणेण।।150।।

अन्वयार्थः- (होऊण चक्कवट्ठी) चक्रवर्ती होकर (चउदसरयणाहिवो) चौदह रत्नों के स्वामित्व को (संपत्तो वि) प्राप्त होकर भी (बंभदत्तो) ब्रह्मदत्त (पारद्धिरमणेण) शिकार खेलने से (मरिऊण) मरकर (णिरयं) नरक में (गओ) गया।

णासावहारदोसेण दंडण पाविऊण सिरिभूई।
मरिऊण अट्टझाणेण हिंडिओ दीहसंसारे।।151।।

अन्वयार्थः- (णासावहारदोसेण) धरोहर को अपहरण करने के दोष से (दंडण पाविऊण) दंडों को पाकर (सिरिभूई) श्रीभूति पुरोहित (अट्टझाणेण) आर्त ध्यान से (मरिऊण) मरकर (दीहसंसारे) दीर्घ संसार में (हिंडिओ) घूमता रहा।

होऊण खयरणाहो, वियक्खणो अद्धचक्कवट्टी वि।
मरिऊण गयउ णिरयं, परित्थिहरणेण लंकेसो।।152।।

अन्वयार्थः- (वियक्खणो) विलक्षण बुद्धिमान (अद्धचक्कवट्टी वि) अर्धचक्रवर्ती भी (खयरणाहो होउण) विद्याधरों का स्वामी होकर (लंकेसो) लंका का स्वामी रावण (परित्थहरणेण) पर नारी के हरण से (मरिऊण) मर कर (णिरयं) नरक में (गयउ) गया।

एए महाणुभावा, दोसं एक्केक्कविसणसेवाओ।
पत्ता जो पुण सत्त वि, सेवइ वण्णिज्जए किं सो।।153।।

अन्वयार्थः- (एए महाणुभावा) ऐसे ऐसे महानुभाव (एक्केक्क विसण सेवाओ) एक एक व्यसन के सेवन करने से (दोसं) दोष को ।।दुख को।। (पत्ता) प्राप्त हुये (पुण जो) फिर जो (सत्त वि) सातों की व्यसनों को (सेवइ) सेवन करता है, (वण्णिज्जए किं) उसके दुःख का क्या वर्णन किया जा सकता है।

साकेते सेवंतो सत्त वि वसणाइं रुद्ददत्तो वि।
मरिऊण गओ णिरयं भमियो पुण दीहसंसारे।।154।।

अन्वयार्थः- (साकेते) साकेत नगर।। अयोध्या।। में (रुद्ददत्तो वि) रुद्रदत्त भी (सत्त वि वसणाइं) सातों ही व्यसनों का (सेवंतो) सेवन करता हुआ (मरिऊण) मर कर (णिरयं गओ) नरक गया (पुण) और (दीहसंसारे) दीर्घ काल संसार में (भमियो) भटकता रहा।

एवं बहुप्पयारं दुक्खं संसार सायरे घोरे।
जीवों सरण विहीणो वसणस्स फलेण पाउणई।।155।।

अन्वयार्थः- (एवं) इस प्रकार (घोरे संसार सायरे) भयंकर संसार रूपी

सागर में (सरण विहीणो) शरण से रहित (जीवो) जीव (वसणस्स फलेण) व्यसन के फल से (बहुप्पयारं दुक्खं) बहुत प्रकार के दुखों को (पाउणई) पाता है।

एवं दंसण सावय ठाणं पढमं समासओ भणियं।
वय सावय गुणठाणं एत्तो विदियं पवक्खामि।।156।।

अन्वयार्थः- (एवं) इस प्रकार (पढमं) पहला (दंसणसावयठाणं) दार्शनिक श्रावक का स्थान (समासओ) संक्षेप से (भणियं) कहा (एत्तो) अब इसके आगे (वय सावय गुणठाणं) व्रतिक श्रावक का दूसरा प्रतिमा स्थान (पवक्खामि) कहता हूँ।

पंचेव अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावयाइं चत्तारि जाण विदियम्मि ठाणम्मि।।157।।

अन्वयार्थः– (विदियम्मि ठाणम्मि) द्वितीय स्थान में अर्थात् दूसरी प्रतिमा में (पंचेव अणुव्वयाइं) पाँचों अहिंसादि अणुव्रत (तिण्णिगुणव्वयाइं) तीन गुण व्रत (तह) तथा (चत्तारि सिक्खावयाइं) चार शिक्षा व्रत (हवंति) होते हैं। (जाण) ऐसा जानना चाहिये।

हिंसाविरई सच्चं अदत्तपरिवज्जणं च थूलवयं।
परमहिलापरिहारो परिमाणं परिग्गहस्से य।।158।।

अन्वयार्थः– (हिंसाविरई) हिंसाविरति।।अहिंसाणुव्रत।। (असच्चविरई) स्थूल असत्य का त्याग।।सत्याणुव्रत।। (च अदत्त परिवज्जणं) और बिना दी हुई वस्तु के ग्रहण का त्याग।।अचौर्याणुव्रत।। (पर महिला परिहारो) परस्त्री का त्याग ।।ब्रह्मचर्याणुव्रत।। (य) और (परिग्गहस्से परिमाणं) परिग्रह का परिमाण ।।परिग्रह परिमाणाणुव्रत।। (थूलवयं) ये पाँच स्थूल अहिंसादि अणुव्रत हैं।

दिसि विदिसि पच्चक्खाणं अणत्थदंडाण होई परिहारो।
भोओवभोयसंखा एएह गुणव्वया तिण्णि।।159।।

अन्वयार्थः- (दिसि विदिसि पच्चक्खाणं) दिशाओं और विदिशाओं में

मर्यादा करके उसके बाहर जाने का त्याग करना, यह पहला 'दिग्व्रत' नामक गुणव्रत है। (अणत्थ दंडाण परिहारो) दूसरे दिग्व्रत में अनर्थ दण्डों का परित्याग किया जाता है। (भोओवभोयसंख्या) भोगोपभोगों की संख्या की सीमा की जाती हैं ये भोगोपभोग परिमाण नाम का तीसरा गुणव्रत है। (एएह गुणव्वया तिण्णि होइ) इस प्रकार गुणव्रत तीन होते हैं।

देवे थुवइ तियाले पव्वे–पव्वे य पोसहोवासं।
अतिहीण संविभाओ मरणंते कुणइ सल्लिहणं।।160।।

अन्वयार्थः- प्रातःकाल, मध्यान्हकाल और सांयकाल (तियाले देवे थुवइ) इन तीनों कालों में अरिहंत देव की स्तुति करता है, यह सामायिक नाम का पहला शिक्षाव्रत है (पव्वे-पव्वे पोसहोवासं) प्रत्येक महीने की दो अष्टमी और दो चतुर्दशी इन चारों पर्वों में प्रोषधोपवास करता है, यह प्रोषधोपवास नाम का दूसरा शिक्षाव्रत है। (अतिहीण संविभाओ) अतिथियों को दान देता है, यह तीसरा अतिथि संविभाग नाम का शिक्षाव्रत है (य) और (मरणंते सल्लिहणं कुणइ) मरते समय शरीर और कषायों को कृष करते हुए सल्लेखना धारण करता है, यह सल्लेखना नाम का चौथा शिक्षाव्रत है।

एवं बारसभेयं वयठाणं वण्णियं मए विदियं।
सामाइयं तइज्जं ठाणं संखेवओ वोच्छं।।161।।

अन्वयार्थः- (एवं मए) इस प्रकार मेरे ।।वसुनन्दि आचार्य के।। द्वारा (विदियं वयठाणं) दूसरे व्रत स्थान अर्थात् दूसरी व्रत प्रतिमा के (बारसभेयं) बारह भेदों का (वण्णियं) वर्णन किया। अब (तइज्जं) तीसरे (सामाइयं ठाणं) सामायिक स्थान याने सामायिक प्रतिमा को (संखेवओवोच्छं) संक्षेप में कहता हूँ।

होऊण सुई चेइयगिहम्मि सगिहे व चेइयाहिमुहो।
अण्णत्थ सुइपएसे पुव्वमुहो उत्तरमुहो वा।।162।।

अन्वयार्थः- (सुई होऊण) शुचि होकर अर्थात् शुद्ध होकर (चेइयगिहम्मि) चैत्यालय में (व) अथवा (सगिहे) अपने घर में/गृह चैत्यालय में (चेइयाहिमुहो) प्रतिमा के सम्मुख होकर (अण्णत्थ) अन्यत्र (सुइपए से) पवित्र स्थानों

में (पुव्वमुहो) पूर्वाभिमुख (वा) या (उत्तरमुहो) उत्तराभिमुख होकर-

जिणवयणधम्मचेइयपरमेट्ठिजिणयालयाण णिच्चं पि।
जं वंदणं तियालं करेइ सामाइयं तं खु।।163।।

अन्वयार्थः- (जिणवयण) जिनवाणी (जिणधम्म) जिनधर्म (जिणचेइय) जिनबिम्ब (परमेट्ठि) पंचपरमेष्ठी और (जिणयालयाण) कृत्रिम-अकृत्रिम जिन चैत्यालयों की (जं णिच्चं पि) जो नित्य ही (तियालं) त्रिकाल (वंदणं) वंदना (करेइ) करता है (तं खु) वह निश्चय से (सामाइयं) सामायिक नाम का तीसरा प्रतिमा स्थान है।

काउस्सग्गम्हि ठिओ लाहालाहं च सत्तुमित्तं च।
संजोयविप्पजोयं तिण कंचण चंदणं वासिं।।164।।

अन्वयार्थः- (काउस्सग्गम्हि ठिओ) कायोत्सर्ग में स्थिति होकर (लाहालाहं च) लाभ और अलाभ को (सत्तुमित्तं च) शत्रु और मित्र को (संजोय विप्पजोयं) अनिष्ट संयोग तथा इष्ट वियोग को (तिणकंचण) तिनका और स्वर्ण को (चंदणं वासिं) चंदन और वसूला को-

जो पस्सइ समभावं मणम्मि धरिऊण पंच णवयारं।
वर अट्ठपाडिहारेहिं संजुयं जिणसरूवं च।।165।।

अन्वयार्थः- (जो समभावं पस्सइ) जो समभाव को देखता है (च) और (मणम्मि) मन में (पंचणवयारं धरिऊण) पंच नमस्कार मंत्र को धारण कर (वरअट्ठपाडिहारेहिं) श्रेष्ठ अष्टप्रातिहार्यों से (संजुयं) सहित (जिणसरूवं) अर्हंत भगवान के स्वरूप को (च) और-

सिद्धसरूवं झायइ अहवा झाणुत्तमं ससंवेयं।।
खणमेक्कमविचलंगो उत्तमसामाइयं तस्स।।166।।

अन्वयार्थः- (सिद्धसरूवं) सिद्ध भगवान के स्वरूप को (अहवा) अथवा (ससंवेयं) संवेग सहित (अविचलंगो) निश्चल अंग होकर (खणमेक्कं) एक क्षण को

भी (झाणुत्तमं झायइ) उत्तम ध्यान करता है (तस्स) उसके (उत्तमसामाइयं) उत्तम सामायिक होता है।

एवं तइयं ठाणं भणियं सामाइयं समासेण।
पोसहविहिं चउत्थं ठाणं एत्तो पवक्खामि।।167।।

अन्वयार्थः- (एवं) इस प्रकार (सामाइयं तइयं) सामायिक नाम का तीसरा (ठाणं) प्रतिमा स्थान (समासेण) संक्षेप से (भणियं) कहा। (एत्तो) अब इसके आगे (पोसहविहिं) प्रोषध विधि नाम के (चउत्थं ठाणं) चौथे प्रतिमा स्थान को (पवक्खामि) कहता हूँ।

उत्तम मज्झजहण्णं तिविहं पोसहविहाणमुद्दिट्ठं।
सगसत्तीए मासम्मि चउस्सु पव्वेसु कायव्वं।।168।।

अन्वयार्थः- (उत्तम मज्झ जहण्णं) उत्तम-मध्यम और जघन्य के भेद से (तिविहं) तीन प्रकार का (पोसहविहाणमुद्दिट्ठं) प्रोषध विधान कहा गया है। यह श्रावक को (सगसत्तीय) अपनी शक्ति अनुसार (मासम्मि चउस्सु पव्वेसु) एक माह के चारों पर्वों में (कायव्वं) करना चाहिये।

सत्तमि तेरसि दिवसम्मि अतिहिजनभोयणावसाणम्मि।
भोत्तूण भुंजणिज्जं तत्थ वि काऊण मुहसुद्धिं।।169।।

अन्वयार्थः- (सत्तमि तेरसि दिवसम्मि) सप्तमी और त्रयोदशी के दिन (अतिहिजन भोयणावसाणम्मि) अतिथिजनों के भोजन के अन्त में स्वयं (भोत्तूण भुंजणिज्जं) भोज्य वस्तुओं का भोजन कर (तत्थ वि) वहीं पर (मुह सुद्धिं काऊण) मुख शुद्धि करके-

पक्खालिऊण वयणं करचरणं णियमिऊण तत्थेव।
पच्छा जिणिंदभवणं गंतूण जिणं णमंसित्ता।।170।।

अन्वयार्थः- (वयणं करचरणं) मुख और हाथ पैर (पक्खालिऊण) धोकर (तत्थेव) वहीं पर ही (णियमिऊण) उपवास सम्बंधी नियम करके (पच्छा) पश्चात्

(जिणिंदभवणं) जिन मंदिर को (गंतूण) जाकर (जिणं णमंसित्ता) जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके-

गुरूपुरओ किदियम्मं वंदणपुव्वं कमेण काऊण।
गुरूसक्खियमुववासं गहिऊण चउव्विहं विहिणा।।171।।

अन्वयार्थः- (गुरुपुरओ) गुरु के सामने (वंदणपुव्वं) वंदना पूर्वक (कमेण) क्रमशः (किदियम्मं) कृतिकर्म को (काऊण) करके (गुरुसक्खियं) गुरू की साक्षी में (विहिणा) विधिपूर्वक (चउव्विहं) चारों प्रकार के आहार के त्याग रूप (उववासं गहिऊण) उपवास को ग्रहण करः-

वायण कहाणुपेहण सिक्खावणचिंतणोवओगेहिं।
णेऊण दिवससेसं अवराण्हियवंदणं किच्चा।।172।।

अन्वयार्थः- (वायणकहाणुपेहण सिक्खावण चिंतणो व ओगेहिं) शास्त्र वाचन, धर्म कथा श्रवण-श्रावण, अनुप्रेक्षा चिंतन, पठन-पाठन आदि के उपयोग द्वारा (दिवससेसं णेऊण) शेष दिन को व्यतीत करके (अवराण्ह्यवंदणं) अपराह्निक वंदना (किच्चा) करके-

रयणि समयम्हि ठिच्चा काउस्सग्गेण णियय सत्तीए।
पडिलेहिऊण भूमिं अप्पपमाणेण संथारं।।173।।

अन्वयार्थः- (रयणि समयम्हि) रात्रि के समय (णियय सत्तीए) अपनी शक्ति के अनुसार (काउस्सग्गेण) कायोत्सर्ग से (ठिच्चा) स्थित होकर (भूमि) भूमि का (पडिलेहिऊण) प्रतिलेखन करके।।जमीन को शोधकर।। (अप्पपमाणेण) अपने शरीर के बराबर (संथारं) बिस्तर-

दाऊण किंचि रत्तिं सइऊण जिणालए णियघरे वा।
अहवा सयलं रत्तिं काउस्सग्गेण णेऊण।।174।।

अन्वयार्थः- (दाऊण) लगाकर (किंचिरत्तिं) कुछ रात्रि तक (णियधरे) अपने घर में (वा) अथवा (जिणालए) जिनालय में (सइऊण) होकर (अहवा) अथवा

(सयलं रत्तिं) सम्पूर्ण रात्रि में (काउस्सग्गेण णेऊण) कायोत्सर्ग से बिताकर-

पच्चूसे उट्ठित्ता वंदण विहिणा जिणं णमंसित्ता।
तह दव्व भावपुज्जं जिण सुय साहूण काऊण।।175।।

अन्वयार्थः- (पच्चूसे) प्रातःकाल में (उट्ठित्ता) उठकर (वंदण विहिणा) वंदना विधि से (जिणं णमंसित्ता) जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके (तह) तथा (जिणसुय साहूण) देव शास्त्र गुरु की (दव्व भाव पुज्जं) द्रव्य भाव पूजा (काऊण) करके-

उत्तविहाणेण तहा दियहं रत्तिं पुणो वि गमिऊण।
पारणादिवसम्मि पुणो पूयं काऊण पुव्वंव।।176।।

अन्वयार्थः- (उत्तविहाणेण) पूर्वोक्त विधि से (तहा) उसी तरह (पुणो वि) फिर भी (दियहं रत्तिं) दिन रात को (गमिऊण) बिताकर (पारणा दिवसम्मि पुणो) पारणा के दिन पुनः (पुव्वं व) पूर्व की तरह (पूयं काऊण) जिन पूजा करके-

गंतूण णिययगेहं अतिहिविभागं च तत्थ काऊण।
जो भुंजइ तस्स फुडं पोसहविहि उत्तमं होति।।177।।

अन्वयार्थः- (णिययगेहं गंतूण) अपने घर जाकर (तत्थ च) और वहाँ (अतिहिविभागं) अतिथि संविभाग करके (जो भुंजइ) जो भोजन करता है। (तस्स) उसके (फुडं) स्पष्ट रूप से (उत्तमं पोसहविहि) उत्तम प्रोषधविधि (होति) होती है।

जह उक्कस्सं तह मज्झिमं वि पोसहविहाणमुद्दिट्ठं।
णवरविसेसो सलिलं छंडित्ता वज्जए सेसं।।178।।

अन्वयार्थः- (जह उक्कस्सं) जैसे उत्कृष्ट (पोसह विहाण मुद्दिट्ठं) प्रोषध विधान कहा (तह) उसी तरह (मज्झिमं वि) मध्यम भी (णवर) केवल (विसेसो) विशेषता यह है कि (सलिलं छंडित्ता) जल को छोड़कर (सेसं वज्जए) शेष सब प्रकार के भोजन का त्याग करता है।

मुणिऊण गुरुवकज्जं सावज्जविवज्जियं णियारंभं।
जइ कुणइ तं पि कुज्जा सेसं पुव्वं व णायव्वं।।179।।

अन्वयार्थः- (सावज्जविवज्जियं) सावद्य से ।।पाप से।। रहित (णियारंभं) निजी आरम्भ से रहित (गुरुवकज्जं मुणिऊण) गुरु कार्य को जानकर (जइ कुणइ) यदि करता हैं (तं पि कुज्जा) तो उसको भी कर सकता है (सेसं) शेष (पुव्वं व) पूर्व की तरह (णायव्वं) जानना चाहिये।

आयंबिलणिव्वयडी एयट्ठाणं वा एयभत्तं वा।
जं कीरइ तं णेयं जहण्णयं पोसहविहाणं।।180।।

अन्वयाथः- (जं) जो अष्टमी आदि पर्व के दिनों में (आयंबिलणिव्वयडी) आचाम्ल निविकृति/नीरस भोजन (एयट्ठाणं) एक स्थान (वा) तथा (एयभत्तं) एक बार भोजन को (कीरइ) करता है। (तं) उसे (जहण्णयं) जघन्य (पोसह विहाणं) प्रोषधविधान (णेयं) जानना चाहिये।

सिरण्हाणुव्वट्टण गंधमल्ल केसाइदेह संकप्पं।
अण्णं पि रागहेउं विवज्जए पोसह दिणम्मि।।181।।

अन्वयार्थः- (पोसह दिणम्मि) प्रोषध के दिन (सिरण्हाणुव्वट्टण) सिर से स्नान करना, उबटन लगाना (गंधमल्ल केसाइदेह संकप्पं) सुगंधित द्रव लगाना, माला पहनना, बालों को सजाना और शरीर का संस्कार।।श्रृंगार।। करना (अण्णं पि) तथा अन्य भी (रागहेउं) राग के कारणों को (विवज्जए) छोड़ देना चाहिये।

एवं चउत्थठाणं विवण्णियं पोसहं समासेण।
एत्तो कमेण सेसाणि सुणह संखेवओ वोच्छं।।182।।

अन्वयार्थः- (एवं) इस प्रकार (पोसहं) प्रोषध नाम का (चउत्थठाणं) चौथा प्रतिमा स्थान (समासेण) संक्षेप से (विवण्णियं) वर्णन किया। (एत्तो) अब इसके आगे (कमेण) क्रम से (सेसाणि) शेष प्रतिमा स्थानों को (संखेवओ) संक्षेप से (वोच्छं) कहूँगा, (सुणह) सो सुनो।

जं वज्जिज्जइ हरियं तुय पत्त पवाल कंद फल वीयं।
अप्पासुगं च सलिलं सचित्त णिव्वत्ति तं ठाणं।।183।।

अन्वयार्थः- (जं) जो (हरियं तुय) हरित छाल (पत्त) पत्ते (पवाल) प्रवाल (कंद) कंद (फल) फल (वीयं) बीज (च) और (अप्पासुगं सलिलं) अप्रासुक जल (वज्जिज्जइ) का त्याग किया जाता है (तं) वह (सचित्त णिव्वत्ति) सचित त्याग नाम का पाँचवाँ (ठाणं) प्रतिमा स्थान है।

मण वयण काय कय कारियाणु मोएहिं मेहुणं णवधा।
दिवसम्मि जो विवज्जइ गुणम्मि सो सावओ छट्ठो।।184।।

अन्वयार्थः- (जो) जो (मण वयण काय कय कारियाणु मोएहिं) मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना के द्वारा (णवधा) नौ प्रकार से (दिवसम्मि) दिन में (मेहुणं) मैथुन का (विवज्जई) त्याग करता है (सो) वह (गुणम्मि) प्रतिमा रूप गुण स्थान में (छट्ठो) छटवाँ (सावओ)।।प्रतिमाधारी।। श्रावक है।

पुव्वुत्त णव विहाणं पि मेहुणं सव्वदा विवज्जंतो।
इत्थिकहाइणिवित्तो सत्तमगुणवंभयारी सो।।185।।

अन्वयार्थः- (पुव्वुत्त णव विहाणं) जो पूर्वोक्त नौ प्रकार के (पि मेहुणं) मैथुन के ही (सव्वदा) सर्वदा (विवज्जंतो) त्याग करता हुआ (इत्थिकहाइणिवित्तो) स्त्री कथा आदि से निवृत हो जाता है। (सो) वह (सत्तम गुण वंभयारी) सातवीं प्रतिमा रूप गुण का धारी ब्रह्मचारी श्रावक है।

जं किंचि गिहारंभं बहु थोवं वा सया विवज्जेदि।
आरंभ णियत्त मई सो अट्ठम सावओ भणिओ।।186।।

अन्वयार्थः- (जं किंचि) जो कुछ भी (बहु थोवं) थोड़ा या बहुत (गिहारंभं) घर संबंधी आरम्भ होता है उसे जो (सया विवज्जेदि) सदा के लिए छोड़ता है, त्याग करता है (सो) वह (आरंभ णियत्त मई) आरम्भ से निवृत्त हुई है बुद्धि जिसकी, ऐसा आरम्भ त्यागी (अट्ठम सावओ) आठवीं प्रतिमाधारी श्रावक

(भणिओ) कहा गया है।

मोत्तूण वत्थ मेत्तं परिग्गहं जो विवजए सेसं।
तत्थ वि मुच्छं ण करेइ जाणइ सो सावओ णवमो।।187।।

अन्वयार्थः- (जो वत्थमेत्तं) जो वस्त्र मात्र (परिग्गहं) परिग्रह को (मोत्तूण) रखकर (सेसं) शेष सब परिग्रह को (विवज्जए) छोड़ देता है (तत्थ वि) स्वीकृत वस्त्र मात्र परिग्रह में भी (मुच्छं ण करेइ) मूर्च्छा नहीं करता (सो) उसे (णवमो) नौवाँ (सावओ) श्रावक जानना चाहिये।

पुट्ठो वा पुट्ठो वा णियगेहि परेहिं च सगिहकज्जम्मि।
अणुमणणं जो ण कुणइ वियाण सो सावओ दसमो।।188।।

अन्वयार्थः- (णियगेहि परेहिं च) स्वजनों से व परिजनों से (पुट्ठो वा पुट्ठो वा) पूछा गया अथवा नहीं पूछा गया (जो सावओ) जो श्रावक (सगिहकज्जम्मि) अपने गृह संबंधी कार्यों में (अणुमणणं) अनुमोदना नहीं करता (सो) वह (दसमो सावओ वियाण) अनुमति त्याग दसवाँ प्रतिमा धारी श्रावक जानना चाहिये।

एयारसम्मि ठाणे उक्किट्ठो सावओ हवे दुविहो।
वत्थेक्कधरो पढमो कोवीण परिग्गहो विदिओ।।189।।

अन्वयार्थः- (एयारसम्मि ठाणे) ग्यारहवें प्रतिमा स्थान में (उक्किट्ठो सावओ) उत्कृष्ट श्रावक (दुविहो हवे) दो प्रकार का होता (वत्थेक्कधरो पढमो) एक वस्त्र को रखने वाला पहला (विदिओ कोवीण परिग्गहो) और दूसरा कोपीन।।लंगौटी।। मात्र परिग्रह को रखने वाला।

धम्मिल्लाणं चयणं करेइ कत्तरिछुरेण वा पढमो।।
ठाणं सुप्पडिलेहइ मिओवकरणेण पयडप्पा।।190।।

अन्वयार्थः– (पढमो) प्रथम उत्कृष्ट श्रावक।।क्षुल्लक, क्षुल्लिका।। (धम्मिल्लाणं चयणं) बालों की हजामत (कत्तरिछुरेण वा) कैंची से अथवा उस्तरे से

(करेइ) करता है तथा (पयडप्पा) प्रकृत आत्मा, प्रयत्नशील या सावधान होकर (ठाणं) स्थान आदि को (मिओवकरणेण)।।वस्त्र-पिच्छी आदि।। मृदु उपकरण से (सुप्पडिलेहइ) अच्छी तरह प्रतिलेखन अर्थात् परिमार्जन संशोधन करता है।

भुंजेइ पाणि पत्तम्मि भायणे वासइ समुवविट्ठो।
उववासं पुण णियमा चउव्विहं कुणइ पव्वेसु।।191।।

अन्वयार्थः- (पाणिपत्तम्मि भायणे वा) पाणि पात्र में अथवा कटोरा/थाली आदि बर्तनों में (सइ समुवविट्ठो) सदा एक बार बैठकर भोजन करता है (पुण) फिर (चउव्विहं पव्वेसु) चारो पर्वों में चतुर्विध आहार का त्याग कर (उववासं णियमा कुणइ) उपवास नियम से करता है।

पक्खालिऊण पत्तं पविसइ चरियाय पंगणे ठिच्चा।
भणिऊण धम्मलाहं जायइ भिक्खं सयं चेव।।192।।

अन्वयार्थः– (पत्तं पक्खालिऊण) पात्र को प्रक्षालित करके (चरियाय) चर्या/आहार के लिए श्रावक के घर में (पविसइ) प्रवेश करता है और (पंगणे ठिच्चा) प्रांगण/आंगन में ठहरकर (धम्मलाहं) धर्म लाभ (भणिऊण) कहकर (सयं चेव) स्वयं ही (भिक्खं) भिक्षा को (जायइ) जाता है, प्राप्त करता है, मांगता है।

जं किंपि पडियभिक्खं भुंजिज्जो सोहिऊण जुत्तेण।
पक्खालिऊण पत्तं गच्छिज्जो गुरुसयासम्मि।।193।।

अन्वयार्थः- (जं किंपि पडिय भिक्खं) जो कुछ भी योग्य भिक्षा प्राप्त हुई हो, उसे (जुत्तेण सोहिऊण) यत्नपूर्वक शोधकर (भुंजिज्जो) भोजन करे। (पत्तं पक्खालिऊण) पात्र को प्रक्षालित कर (गुरू सयासम्मि) गुरू के पास में (गच्छिज्जो) जावें।

उद्दिट्ठ पिंड विरओ दुवियप्पो सावओ समासेण।
एयारसम्मि ठाणे भणिओ सुत्ताणुसारेण।।194।।

अन्वयार्थः- (एयारसम्मि ठाणे) ग्यारहवें प्रतिमा स्थान में (सुत्ताणुसारेण) उपासकाध्ययन सूत्र के अनुसार (समासेण) संक्षेप से (उद्दिट्ठ पिंड विरओ)

उद्दिष्ठ आहार के त्यागी (दुवियप्पो सावओ) दोनों प्रकार के श्रावक (भणिओ) कहे गये।

जं सक्कइ तं कीरई जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
केवलिजिणेहि भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं।।195।।

अन्वयार्थः- (जं सक्कइ) जितनी शक्ति है (तं कीरई) उसे करो (जं च ण सक्कइ) और जितनी शक्ति नहीं है (तहेव) उसको वैसा ही (सद्दहणा) श्रद्धान करो (केवलिजिणेहि) केवली सर्वज्ञ जिनेन्द्र भगवान ने (सद्दहमाणस्य) श्रद्धान करने वाले के (सम्मत्तं) सम्यग्दर्शन (भणियं) कहा है।

।।इति श्रावक स्थान प्रकरण।।

जीव दया प्रकरण

देविंद चक्क वट्टित्तणाइं भोत्तूण सिवसुहमणंतं।
पत्ता अणंतसत्ता अभयं दाऊण जीवाणं।।196।।

अन्वयार्थः– पूर्व काल में अनंत भव्य जीव (जीवाणं अभयं दाऊण) जीवों को अभयदान देकर (देविंद चक्क वट्टित्तणाइं) देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि के सुखों को (भोत्तूण) भोग कर (अणंत सत्ता) अनंत सत्ता स्वरूप (अणंत सिवसुहं) अनंत मोक्ष सुख को (पत्ता) प्राप्त हुये हैं।

जे पुण छज्जीववहं कुणंति असंजया णिरणुकंपा।
ते दुहलक्खाभिहया भमंति संसारकांतारे।।197।।

अन्वयार्थः- (जे पुण) और जो (णिरणुकंपा असंजया) निर्दयी असंयत (छज्जीववहं) छह जीवनिकाय के जीवों का वध (कुणंति) करते हैं, (ते) वे (दुहलक्खाभिहया) लाखों दुःखों से पीड़ित (संसार कांतारे) संसार रूपी जंगल में

(भमंति) भ्रमण करते हैं।

णाऊण दुहमणंतं जिणोवएसाओ जीव वहयाणं।
होज्ज अहिंसाणिरओ जहि णिव्वेओ भवदुहेसु।।198।।

अन्वयार्थः– (जिणोवएसाओ) जिनेन्द्र भगवान के उपदेश से (जीव वहयाणं) जीवों के वध का फल (दुह मणंतं) अनंत दुःखमय जानकर यदि (भवदुहेसु) संसार दुःखों में (णिव्वेओ) निर्वेद ।।वैराग्य।। है तो (अहिंसा णिरओ) अहिंसा में निरत/संलग्न (होज्ज) होइये।

जो देइ परे दुःखं तं चिय सो लहइ लक्ख सय गुणियं।
वीयं जहा सुखित्ते विवाइयं बहुफलं होइ।।199।।

अन्वयार्थः- (जहा) जैसे (सुखित्ते) अच्छे खेत में (विवाइयं) बोया गया (वीयं) बीज (बहुफलं होइ) बहुत फल वाला होता है, उसी प्रकार (जो परे दुक्खं देइ) जो दूसरों को दुःख देता है, (सो) वह (तं चिय) उसके फलस्वरूप (लक्ख सय गुणियं) सौ लाख/करोड़ गुना दुःख (लहइ) पाता है।

इक्कंच्चिय जीवदया जणेइ लोयम्मि सयल सोक्खाइं।
जह सलिलं धरणि गयं णिप्पावइ सव्व सस्साइं।।200।।

अन्वयार्थः- (लोयम्मि) लोक में (इक्कंच्चिय जीव दया) एक जीव दया ही (सयल सोक्खाइं) सम्पूर्ण सुखों को (जणेइ) उत्पन्न करती है, (जह) जिस प्रकार (धरणि गयं) भूमि में गया (सलिलं) जल (सव्व सस्साइं) सभी धान्यों को (णिप्पावइ) उत्पन्न कराता है।

णिंबाओ ण होइ गुलो उछू ण य होंति निंबगुलियाओ।
हिंसाओ न होइ सुहं ण य दुक्खं अभयदाणेण।।201।।

अन्वयार्थः- (णिंबाओ गुलो ण होइ) नीम के वृक्ष से गुली उत्पन्न नहीं होती (उछू निंब गुलियाओ) गन्ना से नीम और गुल्ली पैदा नहीं होती, (हिंसाओ) इसी तरह हिंसा से (सुहं ण होइ) सुख नहीं होता (य) और जीवों के (अभयदाणेण दुक्खं

ण) अभयदान से दुःख नहीं होता।

जो देइ अभयदाणं देइ य सोक्खाइं सव्व जीवाणं।
उत्तम ठाणम्मि ठिओ भुंजइ सव्वोत्तमं सोक्खं।।202।।

अन्वयार्थः- (जो सव्व जीवाणं) जो सभी जीवों को (अभयदाणं देइ) अभयदान देता है, (य सोक्खाइं देइ) वह सर्व सुखों को देता है (य) तथा (उत्तम ठाणम्मि ठिओ) उत्तम स्थान में स्थित होता हुआ (सव्वोत्तमं) सर्वोत्तम (सोक्खं) सुख को (भुंजइ) भोगता है।

लोहाओ आरम्भो आरम्भाओ य पाणि वहो।
लोहारंभणियत्ते णपरं अह होइ जीवदया।।203।।

अन्वयार्थः- (लोहाओ आरम्भो) लोभ से आरम्भ होता है (य) और (आरम्भाओ) आरम्भ से (पाणि वहो) प्राणी वध होता है, (अह) इसलिये (लोहारंभणियत्ते) लोभ व आरंभ की निवृत्ति होने पर (परं) श्रेष्ठ (जीवदया होइ) जीव दया होती है अर्थात् लोभ आरंभ की निवृत्ति सबसे उत्तम जीव दया है, (ण) इससे लोभ आरम्भ की निवृत्ति अन्य और कोई जीव दया नहीं है।

धम्मं करेइ तुरिया धम्मेण य होंति सव्व सुक्खाइं।
जीवदयामूलेण य पंचेंदियणिग्गहेणं च।।204।।

अन्वयार्थः- (धम्मेण) धर्म से (सव्व सुक्खाइं) सब सुख (होंति) होते हैं, इसलिये (तुरिया) शीघ्रता से (धम्मं) धर्म को (करेइ) करना चाहिये (य जीवदयामूलेण) तथा वह जीव दया धर्म मूलक है (च) और (पंचेंदियणिग्गहेणं) पंच इन्द्रिय निग्रह से जीव दया का पालन होता है।

जं किंचि णाम दुक्खं णारय तिरियाण तह य मणुयाणं।
तं सव्वं पावेणं तम्हा पावं विवज्जेह।।205।।

अन्वयार्थः- (णारय तिरियाण च) नारकी और तिर्यञ्चों (तहय) तथा (मणुयाणं) मनुष्यों के (जं किंचि दुक्खं) जो कुछ भी दुःख है (तं) वे (सव्व) सभी

(पावेणं) पाप से हैं, (तम्हा) अतः (पावं) सब पापों को (विवज्जेह) छोड़ना चाहिये।

णरणरवइदेवाणं जं सुक्खं सव्व उत्तमं होइ।
तं धम्मेण विहप्पइ तम्हा धम्मं सया कुणह।।206।।

अन्वयार्थः- (णरणरवइ देवाणं) मनुष्य, नरपति (राजा) और (जं) जो (सव्व उत्तमं सुक्खं होइ) सब में श्रेष्ठ सुख प्राप्त होते हैं (तं) वे सब (धम्मेण) धर्म से ही (विहप्पइ) प्राप्त होते हैं (तम्हा) इसलिये (धम्मं) धर्म को (सया) सदा (कुणह) करना चाहिये।

सो दाया सो तवसी सो य सुही पंडिओ य सो चेव।
जो सयलसुक्खवीयं जीवदयं कुणइ खंतिं च।।207।।

अन्वयार्थः- (जो) जो (सयल सुक्ख वीयं) सम्पूर्ण सुखों का बीज (जीवदयं) जीवदया (च) और (खंतिं) क्षमा को (कुणइ) करता है (सो दाया) वह दाता है, (सो तवसी) वह तपस्वी है, (सो य सुही) वह सुखी है (य सो चेव) और वह ही (पंडिओ) पंडित है।

मा कीरउ पाणिवहो मा जंपह मूढ अलियवयणाइं।
मा हरह परधणाइं मा परदारे मइं कुणह।।208।।

अन्वयार्थः- (मूढ) हे मूर्ख प्राणी! (पाणिवहो) प्राणियों का वध (मा कीरउ) मत कर। (अलिय वयणाइं) असत्य वचनों को (मा जंपह) मत बोल। (परधणाइं) दूसरों के धन को (मा हरह) मत चुरा। (परदारे) दूसरों की स्त्री में (मइं) बुद्धि को (मा कुणह) मत लगा।

जो कुणइ मणे खंती जीवदया मद्दवज्जुवं भावं।
सो पावइ णिव्वाणं ण य इंदियलंपडो लोओ।।209।।

अन्वयार्थः- (जो मणे) जो मन में (खंती) क्षमा (जीवदया) जीवदया, (मद्दवज्जुवं) मार्दव और आर्जव (भावं) भाव को (कुणइ) करता है (सो) वह (णिव्वाणं) निर्वाण/मोक्ष को पाता है (य) किन्तु (इंदिय लंपडो लोओ) इन्द्रिय विषयों

में लम्पट।।आसक्त।। लोग (ण) निर्वाण को नहीं पाते हैं।

जो पहरइ जीवाणं पहरइ सो अप्पणो सगत्तेसु।
अप्पाणं जो बइरी दुक्खसहस्साण सो भागी।।210।।

अन्वयार्थः- (जो जीवाणं पहरइ) जो जीवों पर प्रहार करता है (सो) वह (सगत्तेसु) स्वकीय वैभविक उन हिंसा भावों में (अप्पणो पहरइ) अपनी आत्मा का घात करता है (अप्पाणं बइरी) जो अपनी आत्मा का शत्रु है सो वह (दुक्ख सहस्साण) हजारों दुःखों का (भागी) भोक्ता होता है।

जो कुणइ जणो धम्मं अप्पाणं सो सया सुहं कुणइ।
संचयपरो य सुच्चिय संचयसुहसंचओ जेण।।211।।

अन्वयार्थः- (जो जणो) जो मनुष्य (धम्मं कुणइ) धर्म को करता है (सो) वह (सया) सदा (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (सुहं कुणइ) सुखी करता है (य) और (सुच्चिय) स्वच्छ मन के निरंतर (संचयपरो) धर्म के संचय में तत्पर है, (संचय सुहसंचओ) वह ही सुख का संचय करने वाला होता है।

जो देइ अभयदाणं सो सोक्ख सयाइं अप्पणो देइ।
जेण ण पीडेइ परं तेण ण दुक्खं पुणो तस्स।।212।।

अन्वयार्थः- (जो अभयदाणं देइ) जो जीवों को अभय दान देता है (सो) वह (अप्पणो) अपनी आत्मा के लिए (सोक्ख सयाइं) सैकड़ों सुखों को (देइ) देता है। (जेण) जिस कारण से वह (पीडेइ) दूसरे जीवों को पीड़ित नहीं करता है (तेण तस्स) उससे उसको (पुणो) पुनः (ण दुक्खं) दुःख नहीं पहुँचता है।

जीवदया सच्च वयणं परधण परिवज्जणं सुसीलं च।
खंती पंचेदिय णिग्गहो य धम्मस्स मूलाइ।।213।।

अन्वयार्थः- (जीव दया) जीवों पर दया (सच्च वयणं) सत्य वचन (परधण परिवज्जणं) पराये धन का परित्याग (च सुसीलं) और शील व्रत का पालन

करना। (खंती) क्षमा धारण करना (पंचेदिय णिग्गहो) और पंच इन्द्रियों का निग्रह करना। (धम्मस्स) ये धर्म के (मूलाइं) मूल हैं।

जस्स दया तस्स गुणा जस्स दया तस्स उत्तमो धम्मो।
जस्स दया सो पत्तं जस्स दया सो जए पुज्जो।।214।।

अन्वयार्थः– (जस्स दया) जिसके हृदय में दया है (तस्स गुणा) उसके अहिंसादि/क्षमा गुण है, (जस्स दया) जिसके दया है (तस्स) उसके (उत्तमो धम्मो) उत्तम धर्म है, (जस्स दया) जिसके दया है (सो) वह (पत्तं) पात्र है, (जस्स दया) जिसके दया है (सो) वह (जए) जगत में (पुज्जो) पूज्य है।

जस्स दया सो तवसी जस्स दया सो य सीलसंजुत्तो।
जस्स दया सो णाणी जस्स दया तस्स णिव्वाणं।।215।।

अन्वयार्थः- (जस्स दया) जिसके दया है (सो) वह (तवसी) तपसी है। (य) और (जस्स दया) जिसके दया है (सो) वह (सीलं संजुत्तो) शीलवान है। (जस्स दया) जिसके दया है (सो) वह (णाणी) ज्ञानी है। (जस्स दया) जिसके दया है (तस्स) उसका (णिव्वाणं) निर्वाण ।।मोक्ष।। होता है।

जो जीवदयाजुत्तो तस्स सुलद्धो य माणुजो जम्मो।
जो जीवदयारहिओ माणुसवेसेण सो पसवो।।216।।

अन्वयार्थः- (जो जीवदया जुत्तो) जो, जीव समूहमात्र पर दयावान है (तस्स) उसका (माणुजो जम्मो) मनुष्य जन्म पाना (सुलद्धो) सार्थक है (य) और (जो जीवदया रहिओ) जो जीवों की दया से रहित है, (सो) वह (माणुसवेसेण) मनुष्य के वेष में (पसवो) पशु है।

कल्लाण कोडि जणणी दुरिय दुरियारि वग्गणिट्ठवणी।
संसारजलहितरणी इक्कु चिय होइ जीवदया।।217।।

अन्वयार्थः– (कल्लाण कोडि जणणी) करोड़ों कल्याणों को उत्पन्न करने

वाली और (दुरिय दुरियारि वग्गणिट्ठवणी) पाप रूपी खोटे शत्रु वर्ग का ।।निष्ठापन।। निराकरण करने वाली। (संसारजलहितणी) संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिये नौका स्वरूप (इक्कुचिय जीवदया होइ) एक जीव दया ही होती है।

।।इति जीव दया प्रकरण।।

श्रावक विधि प्रकरण

जीविय जल बिन्दु समं संपत्ती तरंग लोलाओ।
सुविणंतरं च पिम्मं जं जाणहि तं कुणिज्जासु।।218।।

अन्वयार्थः– (जीविय जल बिंदु समं) जीवन जल बिन्दु के समान विनाशीक है। (संपत्ती तरंग लोलाओ) संपत्ति जल तरंगों के समान चंचल है। (च पिम्मं सुविणंतरं) और प्रेम स्वप्न के समान अन्तरित ।।अन्तरयुक्त।। है। (जं जाणहि) जो जानो (तं कुणिज्जासु) सो वह करो, अर्थात् जीवन वैभव व वैषयिक प्रेम से विरक्ति धारण करो।

जत्थपुरे जिणभवणं समयविउ साहु सावया जत्थ।
तत्थ सया वसियव्वं पवरजलं इंधणं जत्थ।।219।।

अन्वयार्थः- (जत्थपुरे) जिस नगर में (जिणभवणं) जिन मंदिर हो (जत्थ) जहाँ पर (समयविउ) शास्त्रों के ज्ञाता (साहु सावया) साधु और श्रावक गण निवास करते हों (जत्थ) जहाँ पर (पवरजलं) श्रेष्ठ पर्याप्त जल व (इंधणं) ईंधन हो (तत्थ) उस नगर या गाँव में (सया) सदा (वसियव्वं) रहना चाहिये।

विणओ वैयावच्चं कायकिलेसो च पुज्जणविहाणं।
सत्तीए जहाजोग्गं कायव्वं देसविरएहिं।।220।।

अन्वयार्थः- (देसविरएहिं) देशव्रती श्रावक को (सत्तीए) अपनी शक्ति अनुसार (जहा जोग्गं) यथा योग्य (विणओ) विनय (वेय्या वच्चं) वैयावृत्य (कायकिलेसो) कायक्लेश (य) और (पुज्जणविहाणं) पूजा विधान (कायव्वं) करना

चाहिये।

हिंसा रहिए धम्मे अट्ठारह दोस वज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं।।221।।

अन्वयार्थः– (हिंसा रहिए धम्मे) हिंसा रहित धर्म में (अट्ठारह दोस वज्जिए देवे) अट्ठारह दोषों से वर्जित देव में (णिग्गंथे पव्वयणे) निर्गंथ ।।निस्परिग्रही।। दिगम्बर जैन साधुओं में तथा प्रकृष्ट जिनेन्द्र कथित पूर्वा पर विरोध रहित जिनागम में (सद्दहणं) श्रद्धान करने से (सम्मत्तं) सम्यग्दर्शन (होइ) होता है।

महु मज्ज मंस विरइ चाओ पुण उंबराण पंचण्हं।
अट्ठेव सुमूलगुणा हवंति फुडु देसविरयम्मि।।222।।

अन्वयार्थः- (महु मज्ज मंस विरइ) मधु मद्य माँस से विरति (पुण) और (पंचण्हं उंबराण) पाँच उदुम्बर फलों का (चा ओ) त्याग करना (फुडु देसविरयम्मि) ये स्पष्ट रूप से देशव्रती श्रावक के (अट्ठेव) आठ ही (सुमूलगुणा) मूल गुण (हवंति) होते हैं।

भवणं जिणस्स ण कयं ण य बिम्बं णेय पूइया साहू।
दुद्धरवयं न धरियं जम्मो परिहारिओ तेहिं।।223।।

अन्वयार्थः- (जिणस्स भवणं ण कयं) जिसने जिन मंदिर का निर्माण नहीं कराया (य ण बिबं) और न ही जिनबिम्ब की स्थापना की (णेय साहू पूइया) न ही साधुओं की पूजा की और (दुद्धरवयं न धरियं) न ही कठिन व्रतों को धारण किया (तेहिं) उसने (जम्मो) अपना जन्म/जीवन (परिहारिओ) व्यर्थ ही खो दिया।

भावहु अणुव्वयाइं पालह सीलं च कुणह उववासं।
पव्वे पव्वे णियमं देहीं अणवरयदाणाइं।।224।।

अन्वयार्थः- (अणुव्वयाइं भावहु) अणुव्रतों की भावना करो (सीलं पालह) शीलव्रतों का पालन करो (पव्वे पव्वे) प्रत्येक पर्व में (णियमं) नियमपूर्वक (उववासं कुणह) उपवास करो (च अणवरयदाणाइं) और निरन्तर सद्पात्रों को चार प्रकार का

दान (देहि) दो।

जह गेहेसु पलित्ते कूवं खणिऊण पारयंते ण।
तह संपत्ते मरणे धम्मं कह कीरए जीव।।225।।

अन्वयार्थः- हे जीव (जह) जैसे (गेहेसु पलित्ते) घर में आग लग जाने पर (कूवं खणिऊण) कुँआ खोदकर (ण पारयंते) पार नहीं पाया जा सकता अर्थात् आग नहीं बुझाई जा सकती (तह) उसी तरह (मरणे संपत्ते) मरण के उपस्थित होने पर (धम्मं) धर्म को (कह) कैसे (कीरए) किया जा सकता है अर्थात् नहीं किया जा सकता।

खणभंगुरे सरीरे मणुय भवे अब्भ पडल सारिच्छे।
सारं इत्तिय मित्तं जं कीरइ सोहणो धम्मो।।226।।

अन्वयार्थः– (अब्भ पडल सारिच्छे) मेघ पटल के समान (मणुय भवे) मनुष्य पर्याय मय (खणभंगुरे सरीरे) क्षण भंगुर शरीर में (इत्तिय मित्तं) इतना मात्र सार है कि (जं) जो (सोहणो धम्मो) सुंदर धर्म का आचरण (कीरइ) किया जाता है।

जिणवंदण गुणविणउ तव संयम तह य उवयारु।
जं किज्जइ खणभंगुरे देहे इत्तिऊ सारु।।227।।

अन्वयार्थः- (जिण वंदण) जिनेन्द्र भगवान की वंदना (गुण विणउ) गुणों की विनय ।।वंदना।। (तव य संयम) तप और संयम (तह) तथा (उवयारु) उपकार (जं किज्जइ) जो किया जाता है। (खण भंगुरे) क्षण भंगुर (देहे) शरीर में (इत्तिउ सारु) इतना ही सार है।

जो संतावइ अणुदिह छव्विह जीव णिकाउ।
णिरय णिबंधण कम्मउ बलि किज्जइ सो काउ।।228।।

अन्वयार्थः- (जो णिरय णिबंधण कम्मउ) जो नरक के कारणभूत कर्मों से (अणुविंह) निरंतर (छव्विह जीव णिकाउ) छः प्रकार के जीव निकायों को

(संतावइ) संतापित (पीड़ित) करता है (सो) वह (काउ वलि किज्जई) कैसी पूजा करता है अर्थात् उसका पूजन करना व्यर्थ है, षट्काय जीव विराधन रहित (बलि) नैवेद्य से पूजा करना ही सही पूजा है।

णिग्घिण णिट्ठुर दुट्ठमण जे पाणिबहं करंति।
ते आवज्जिय पाव मरु णिच्छय नरय पडंति।।229।।

अन्वयार्थः– (जे) जो (णिग्घिण) निर्दय (णिट्ठुर) निष्ठुर (दुट्ठमण) दुष्टमन (पाणिबहं) प्राणी वध (करति) करते हैं, (ते) वे (पाव मरु) पाप रूपी मरूस्थल में (आवज्जिय) घूमते हुए (णिच्छय) नियम से (नरय) नरक में (पडंति) पड़ते हैं।

अलिउं जंपहु दुव्वयणु परु दुम्मिज्जइ जेण।
वसु णरवइ णरयं गयउ अलियब्भवदोसेण।।230।।

अन्वयार्थः- (जेण) जिस कारण से तुम (अलिउं जंपहु) झूठ बोलते हो, (दुव्वयणु) दुर्वचनों से (पुरु) पुरुषों को अधिक (दम्मिज्जई) दुखी करते हो, (अलियब्भव) ऐसे ही असत्य भाषण के दोष से (वसुणरवई) वसु राजा (णरयं) नरक (गयउ) गया।

जइ पाणहिं संसइ चढहि जइ णिव्वाहु ण अत्थि।
तह वि अदिणुमसंगहहि जहसिउ जिणसच्छि।।231।।

अन्वयार्थः- (जइ) यदि (पाणहिं) प्राणों पर (संसइ) संशय ।।संकट।। (चढ़हि) आ जाये, (जइ) यदि (णिव्वाहु) निर्वाह भी (ण अत्थि) नहीं हो (तह वि) तो भी (अदिणुं) बिना दी हुई वस्तुओं को (असंगहहि) संग्रह नहीं करना (जह) जिससे (जिणवरसच्छि) जिनवरों की साक्षी पूर्वक (सिउ) शिव कल्याण मय अचौर्याणु (व्रत) की प्राप्ति हो।

जइ णिव्विउ दुहपवरिणि णिवसंतउ संसारि।
मेहणु सुहि सुमणंतर विमणसरंतु णिवारि।।232।।

अन्वयार्थः- (संसारि णिवसंतउ) संसार में रहते हुए (दुहपवरिणि) दुख

को दूर करने वाली (णिव्विउ) निवृत्ति अर्थात् मुक्ति (मेहणु सुहि) मैथुन सुख से (सुमणंतर) अनुसरण करने वाले (विमुणसरंतु णिवारि) अपने मन के अंदर से मैथुन सुख के परिणामों को दूर करो।

गाढ परिग्गह गहिउ णरु हारइ सो अपवग्गु।
मिल्लि परिग्गह दुव्वसणु सिवसुह कारणि लग्गु।।233।।

अन्वयार्थः– (णरु) जो मनुष्य नर नारी (गाढ़ परिग्गह गहिउ) अधिक परिग्रह ग्रहण करता है (सो) वह (अपवग्गु) मोक्ष से (हारइ) वंचित रहता है (परिग्गह दुव्वसणु मिल्लि) अतः परिग्रह रूपी दुर्व्यसनों को छोड़कर (सिवसुह कारणि लग्गु) शिव से सम्बन्धित सुख के कारणों में लगो।

जे जिणणाहं मुहकमलि अवलोयण कय तेसु।
धण्ण तिलोयह लोयणइ मुहमंडल परसेसु।।234।।

अन्वयार्थः- (जे) जो (जिणणाहं) जिनेन्द्र भगवान के (मुहकमलि) मुखकमल का (अवलोयण-कय) अवलोकन करते हैं, नेत्रों से दर्शन करते हैं (तेसु) उन जिनेश्वर के (मुहमंडल) मुखमंडल का (परसेसु) दर्शन करने से (तिलोयह) तीनों लोकों में (तेसु लोयणइ) उसके लोचन ।।नेत्र।। (धण्ण) धन्य हैं।

।।इति श्रावक विधि प्रकरण।।

दान प्रकरण

अभयपयाणं पढमं विदियं तह होइ सत्थदाणं च।
तइयं ओसहदाणं आहारदाणं चउत्थं तु।।235।।

अन्वयार्थः- (अभयपयाणं पढमं) अभय प्रदान करना पहला दान है, (सत्थदाणं विदियं होइ) शास्त्र दान दूसरा दान है, (ओसहदाणं तइयं) औषधि दान तीसरा दान है (तह) तथा (आहार दाणं चउत्थं) आहार दान चौथा दान है।

सव्वेसिं जीवाणं अभयं जो देइ मरणभेत्तूणं।
सो णिब्भओ तिलोए उत्तस्सो होइ सव्वेसिं।।236।।

अन्वयार्थः- (जो मरण भेत्तूणं) जो मरण से भयभीत (सव्वेसिं जीवाणं) सभी जीवों को (अभयं देइ) अभय प्रदान करता है, (सो) वह (तिलोए) तीनों लोकों में (णिब्भओ) निर्भय और (सव्वेसिं उत्तस्सो होइ) सभी प्राणियों में उत्कृष्ट होता है।

सुयदाणेण य लब्भइ मइसुइणाणं च ओहिमणणाणं।
बुद्धितवेण य सहियं पच्छा वर केवलं णाणं।।237।।

अन्वयार्थः– (या सुयदाणेण) और श्रुत ज्ञानमय शास्त्रदान से (मइसुइणाणं) मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान (च ओहिमणणाणं) और अवधिज्ञान, मनः पर्यय ज्ञान (य बुद्धितवेण सहियं) तथा बुद्धि, तप सहित (वर केवलंणाणं) उत्कृष्ट केवल ज्ञान को (लब्भइ) प्राप्त करता है।

ओसहदाणेण णरो अतुलियबलपरक्कमो महासत्तो।
वाहिविमुक्कसरीरो चिराउसो होइ तेयट्ठो।।238।।

अन्वयार्थः- (ओसहदाणेणणरो) औषधि दान से मनुष्य (अतुलियबल परक्कमो) अतुलित बलशाली व पराक्रमी (महासत्तो) महा सत्वशाली मानव (वाहिविमुक्कसरीरो) व्याधियों से रहित निरोगी शरीर वाला (चिराउसो) चिरायु (तेयट्ठो) और तेजस्वी (होइ) होता है।

दाणस्साहारफलं को सक्कइ वण्णिउं भुवणयले।
दिण्णेण जेण भोया लब्भंति मणच्छिया सव्वे।।239।।

अन्वयार्थः- (आहार दाणस्स फलं) आहार दान के फल को (भुवणयले) पृथ्वी तल पर (वण्णिउं को सक्कइ) वर्णन करने में कौन समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं। (जेण दिण्णेण) जिसके देने से (सव्वे मणच्छिया) सभी मनोवांछित (भोया लब्भंति) भोग प्राप्त होते हैं।

दायारो उवसंतो मणवयकायेण संजुवो दच्छो।
दाणे कय उच्छाहो पयडिय वच्छल्लगुणो य मडं।।240।।

अन्वयार्थः- (दायरो) दातार को (उवसंतो) उपशांत क्षमावान (मणवयकायेण संजुवो) मन, वचन, काय से संयत (दच्छो) दक्ष (दाणे कय उच्छाहो) दान करने में उत्साही (पयडिय वच्छल्लगुणो) स्वभावतः वात्सल्य गुणधारी (य) और (मडं) मृदु होना चाहिये।

भत्ती सद्धा य खमा सत्तिं चिय तह य लोहपरिचाओ।
विण्णाणं तह काले सत्त-गुणा होंति दायारे।।241।।

अन्वयार्थः- (भत्ती) भक्ति (सद्धा) श्रद्धा (खमा) क्षमा (सत्तिं) शक्ति (तह) तथा (लोहपरिचाओ) लोभ का परित्यागी, (विण्णाणं) विज्ञानी (तह) तथा (काले) युग काल में आहार आदि देना (सत्त-गुणा) ये सात गुण (दायारे होंति) दातार में होते हैं।

जह नीरं उच्छुगयं काले परिणवइ अमियरूवेण।
तह दाणं वरपत्ते फलेइ भोएहिं विविहेहिं।।242।।

अन्वयार्थः- (जह उच्छुगयं नीरं) जैसे इक्षु में गया जल (काले) काल आने पर (अमियरूवेण) अमृत रूप/मधुर रस रूप से (परिणवइ) परिणमन करता है (तह) उसी प्रकार (वरपत्ते दाणं) श्रेष्ठ पात्र में दिया गया दान (विविहेहिं भोए हिं) विविध प्रकार के भोग रूप से फलता है।

देहो पाणा रूअं विज्जा धम्मं तवो सुअं मोक्खं।
सव्वं दिण्णं णियमा हवेइ आहारदाणेण।।243।।

अन्वयार्थः– (णियमा आहार दाणेण) निश्चित ही आहार दान से (देहो) देह (पाणा) प्राण (रूअं) रूप (विज्जा) विद्या (धम्मं) धर्म (तवो) तप (सुअं) श्रुत और (मोक्खं) मोक्ष (सव्वं दिण्णं) ये सभी दिए हुए (हवेइ) होते हैं।

भुक्खसमा ण हु वाही अण्णसमा णं च ओसहं अत्थि।
तम्हा तं दाणेण य आरोयत्तं हवे दिण्णं।।244।।

अन्वयार्थः- (भुक्खसमा ण हु वाही) भूख के समान व्याधि नहीं (च) और (अण्ण समा ओसहं णं अत्थि) अन्न के समान औषधि नहीं है (तम्हा) इसलिये (तं दाणेण) उस आहार दान के देने से (आरोयत्तं) औषध दान (दिण्णं हवे) दिया समझना चाहिये।

आहारमओ देहो आहारविणा पडेइ णियमेण।
तम्हा जेणाहारो दिण्णो देहो हवइ तेण।।245।।

अन्वयार्थः- (देहो आहारमओ) शरीर आहारमय है। (आहारविणा पडेइ णियमेण) आहार के बिना नियम से शरीर नष्ट होता है (तम्हा) इसलिये (जेणाहारो) जिसने आहार दिया (तेण) उसने (देहो दिण्णो हवइ) उसके द्वारा शरीर दिया हुआ होता है, ।।समझना चाहिये।।

ता देहा ता पाणा तत्त तवो जाणविण्णाणं।
जावाहारो पविसइ देहे जीवाण सोक्खयरो।।246।।

अन्वयार्थः- (जाव) जब (जीवाण) जीवों के (सोक्खयरो) सुखकारी (अहारो) आहार (देहे पविसइ) देह में प्रवेश करता है, (ता देहा) तभी तक शरीर है, (ता पाणा) तभी तक प्राण हैं, (तत्त तवो) उसी से तप और (विण्णाण जाण) विज्ञान जानना चाहिये।

आहारासणे देहो देहेण तवो तवेण रयसडणं।
रयणासे वरणाणं णाणिणमोक्खो जिणो भणइ।।247।।

अन्वयार्थः- (आहारासणे देहो) आहार करने से शरीर (देहेण) शरीर से (तवो) तप (तवेण रयसडणं) तप से कर्मों की निर्जरा (रयणासे) कर्मों की निर्जरा रूप से (वरणाणं) केवल ज्ञान, (णाणिणमोक्खो) केवलज्ञानी को मोक्ष होता है, (जिणो भणइ) ऐसा जिनेन्द्र भगवान कहते हैं।

भुक्खाकय मरण भयं णासइ जीवाण तेण तं अभयं।
सो एव हणइ वाही ओसदं तेण अत्थि आहारो।।248।।

अन्वयार्थः- (आहारो) आहार (जीवाण) जीवों के (भुक्खाकय मरण भयं) भूख से उत्पन्न मरण भय को (णासइ) नष्ट करता है, (तेण) उससे (तं अभयं) इन जीवों को अभय होता है (सो) वह आहार (एव) ही (वाही) क्षुधा रूपी व्याधि को (हणइ) नष्ट करता है (तेण) इसलिये (आहारो) आहार (ओसदं) औषध (अत्थि) है।

आयाराइं सत्थं आहारबलेण पढइ णिस्सेसं।
तम्हा तं सुयदाणं दिण्णं आहारदाणेण।।249।।

अन्वयार्थः- (आहार बलेण) आहार के बल से (णिस्सेसं) सम्पूर्ण (आयाराइं सत्थं) आचारादि शास्त्रों को (पढइ) पढ़ता है, (तम्हा) इसलिये (तं सुयदाणं) उस शास्त्र दान को (आहार दाणेण) आहार दान से (दिण्णं) दिया हुआ जानना चाहिये।

महिसीए तिणदिण्णं पत्तविसेसेण होइ खीरफलं।
सप्पस्स पुणो दिण्णं खीरं पि विसत्तणं कुणई।।250।।

अन्वयार्थः- (पत्तविसेसेण) पात्र की विशेषता से (महिसीए) भैंस को (तिणदिण्णं) दिया हुआ घास (खीरफलं होइ) दूध रूप फल को फलता है अर्थात् भैंस को खिलाया हुआ घास भी दूध रूप हो जाता है, (पुणो) किन्तु (सप्पस्स) सर्प को (दिण्णं) दिया हुआ (खीरं पि) दूध भी (विसत्तणं कुणई) विषपने को करता है।

जं रयणत्तय रहियं मिच्छामइकहिय धम्म अणुलग्गं।
जइ वि हु तवइ सुघोरं तहावि तं कुच्छियं पत्तं।।251।।

अन्वयार्थः– (जं) जो (रयणत्तय रहियं) रत्नत्रय से रहित हैं (मिच्छामइ कहिय) मिथ्यामत में कथित (धम्म) धर्म में (अणुलग्गं) लगा हुआ है (जइ वि) यद्यपि स्पष्ट रूप में (सुघोरं) कठिन तप (तवइ) तपता है, (तहावि) तो भी (तं) वह (कुच्छियं पत्तं) कुपात्र है।

जस्स ण तवो ण चरणं ण चापि जस्सत्थि वरगुणो कोई
तं जाणेह अपत्तं अफलं दाणं कथं तस्स।।252।।

अन्वयार्थः- (जस्स) जिसके (ण तवो) न तप है (ण चरणं) न चारित्र है (ण चापि) और न ही (जस्स) जिसके (कोई वरगुणो अत्थि) कोई श्रेष्ठ गुण है (तं अपत्तं जाणेह) उसे अपात्र जानो, (तस्स दाणं) उसको दिया हुआ दान (अफलं कथं) निष्फल कैसे नहीं है अर्थात् अफल ही है।

ऊसरखेत्ते वीयं सुक्खे रुक्खे य णीरअहिसेओ।
जह तह दाणमपत्ते दिण्णं खु णिरत्थयं होइ।।253।।

अन्वयार्थः- (ऊसर खेत्ते वीयं) ऊसर खेत में बोया हुआ बीज (य सुक्खे रुक्खे) और सूखे वृक्ष में (णीरअहिसेओ) पानी का सींचना (णिरत्थयं होइ) निरर्थक होता है (तह) उसी तरह (अपत्ते दिण्णं) अपात्र में दिया हुआ (दाणं) दान (खु) निश्चय से निरर्थक होता है।

चाण्डाल भिल्ल छिप्पय डोंवय कल्लाल एवमाईणि।
दीसंति रिद्धिपत्ता कुच्छियपत्तस्स दाणेण।।254।।

अन्वयार्थः- (कुच्छिय पत्तस्स) कुपात्र को (दाणेण) दान देने से (चाण्डाल भिल्ल छिप्पय) चांडाल, भील, छीपा ।।रंगरेज।। (डोंवय) डोंगरे ।।ढीमर।। (कल्लाल) कलार (एवमाईणि) इत्यादि नीच जातियों में (सिद्धिपत्ता) रिद्धि संपन्न (दीसंति) दिखते हैं।

पत्थरमया वि दोणी पत्थरमप्पाणयं च बोलेइ।
जह तह कुच्छियपत्तं संसारे चेव बोलेइ।।255।।

अन्वयार्थः– (पत्थरमया वि दोणी) पत्थर की नाव (पत्थरमप्पाणयं) पत्थर स्वरूप अपने आप को (च) और (बोलेइ) डुबोती है (जह तह) उसी तरह (कुच्छियपत्तं) कुपात्र भी (संसारे एव) संसार में ही (बोलेइ) स्वयं डूबता है (च) और दूसरों को डुबाता है।

किविणेण संचियघणं ण होइ उवयारियं जहा तस्स।
महुयरियसंचियं महु हरंति अण्णे सपाणेहिं।।256।।

अन्वयार्थः- (जहा) जैसे (महुयरिय संचियं) मधु मक्खियों द्वारा संचित मधु ।।शहद।। को (अण्णे सपाणेहिं) अन्य पापी लोग अपने हाथों से (हरंति) हर लेते हैं, उसी प्रकार (किविणेण) कृपण के द्वारा (संचिय घणं) संचित धन (तस्स) उसका (उवयारियं) उपकार करने वाला (ण होइ) नहीं होता अर्थात् कंजूस के धन को उसके परिवार के अन्य लोग और राजादि हर लेते हैं।

कस्सत्थि चिरा लच्छी कस्स थिरं जोवणं जीयं।
इस मुणिऊण सुपुरिसा दिंति सुपत्तेसु दाणाइं।।257।।

अन्वयार्थः- (कस्स लच्छी) किसकी लक्ष्मी (चिरा अत्थि) चिरकाल तक रहती है (कस्स) किसका (जोवणं) यौवन तथा (जीयं) जीवन (थिरं) स्थिर है। (इय मुणिउण) ऐसा जानकर (सुपुरिसा) सत्य पुरुष (सुपत्तेसु) सुपात्रों में (दाणाइं) दोनों को ।।चारों प्रकारों के दानों का।। (दिंति) देते हैं।

दुक्खेण लहइ वित्तं वित्ते लद्धे वि दुल्लहं चित्तं।।
लद्धे वित्ते चित्ते सुदुल्लहो पत्तलाभो य।।258।।

अन्वयार्थः- (वित्तं) धन (दुक्खेण) दुःख से (लहइ) प्राप्त होता है, (वित्त) धन के (लद्धे वि) प्राप्त होने पर भी (चित्तं) मन को प्राप्त करना (दुल्लहं) दुर्लभ है, (वित्ते) धन (य) और (चित्ते) मन के (लद्धे) प्राप्त होने पर भी (पत्त लाभो) सुपात्र का लाभ (सुदुल्लाहो) अति दुर्लभ है।

वित्तं चित्तं पत्तं तिण्णि वि पावेइ कहइ जइ पुरिसो।
तो ण लहइ अनुकूलं सयणं पुत्तं कलत्तं च।।259।।

अन्वयार्थः- (जइ) यदि (पुरिसो) पुरुष (कहइ) किसी तरह (वित्तं) धन (चित्तं) मन और (पत्तं) सुपात्र (तिण्णि) तीनों को (पावेइ) पाता है, (तो वि) तो भी (अनुकूलं) अनुकूल (सयणं) स्वजन (पुत्तं) पुत्र (कलत्तं) स्त्री को (ण लहइ) नहीं

पाता।

पडिकूलियाउ काउ विग्घं जो कुणइ धम्म दाणस्स।
उवएसंति दुबुद्धिं दुग्गइ गम कारया असुहा।।260।।

अन्वयार्थः- (काउ) कोई (पडिकूलियाउ) प्रतिकूल व्यक्ति (धम्म दाणस्स) धर्म दान में (विग्घं) विघ्न (कुणइ) करते हैं, (दुग्गइ गम कारया) दुर्गति गमन को करने वाली (असुहा) अशुभ (दुबुद्धिं) दुष्ट बुद्धि का (उवएसंति) उपदेश करते हैं।

सो किह सयणो मण्णइ विग्घं जो कुणइ धम्मदाणस्स।
दाऊण पावबुद्धिं पाडइ दुक्खायरे णिरए।।261।।

अन्वयार्थः– (सो) वह (सयणो) स्वजन (कह) कैसे (मण्णई) माना जाय (जो) जो (धम्म दाणस्स) धर्म दान में (विग्घं) विघ्न (कुणइ) करता है और (पाव बुद्धिं) पाप बुद्धि को (दाऊण) देकर (दुक्खायरे) दुख की खान (णिरए) नर्क में (पाडइ) गिराता है।

सो सयणो सो बंधू सो मित्तो जो सहिज्जओ धम्मो।
जो धम्मविग्घयारी सो सत्तू णत्थि संदेहो।।262।।

अन्वयार्थः– (सो सयणो) वह स्वजन है (सो बंधू) वह बांधव है (सो मित्तो) वह मित्र है, (जो धम्मो सहिज्जओ) जो धर्म में सहायक है (जो धम्म विग्घयारी) जो धर्म में विघ्न करने वाला है, (सो सत्तू) वह शत्रु है, (णत्थि संदेहो) इसमें संदेह नहीं है।

ते धण्णा लोयतए तेहिं णिरुद्धाइं कुगइ गमणाइं।
वित्तं चित्तं पत्तं पाविय जेहिं दिण्णं दाणाइं।।263।।

अन्वयार्थः- (लोयतए) तीनों लोकों में (ते धण्णा) वे धन्य हैं, (तेहिं) उन्होंने ही (कुगइ गमणाइं) कुगति गमन के कारणों को (णिरुद्धाइं) निरोध किया है (जेहिं) जिन्होंने (वित्तं) धन (चित्तं) मन (पत्तं) पात्र को (पाविय) पाकर (दाणाइं)

आहारादि दानों को (दिण्णं) दिया है।

मुणिभोयणेण दव्वं जस्स गयं जोवणं च तवयरणे।
सण्णासेण य जीवं जस्स गयं किं गयं तस्स।।264।।

अन्वयार्थः- (जस्स दव्वं) जिसका द्रव्य ।।धन।। (मुणि भोयणेण मयं) मुनियों के आहार दान में गया (च) और (जोवणं) यौवन (तवयरणे) तपश्चरण करने में व्यतीत हुआ (य जस्स जीवं) और जिसका जीवन (सण्णासेण) सन्यास में गया (तस्स) उसका (किं गयं) क्या गया? अर्थात् कुछ भी नहीं गया।

जेहि ण दिण्णं दाणं च वि पुज्जा किया जिणिंदस्स।
ते हीण दीण दुग्गय भिक्खं ण लहंति जायंता।।265।।

अन्वयार्थः- (जेहि दाणं ण दिण्णं) जिन्होंने दान नहीं दिया (च ण वि) और न ही (जिणिंदस्स पुज्जा किया) जिनेन्द्र भगवान की पूजा की (ते) वे (दीण-हीण) दीन हीन दरिद्र (जायंता) होते हुए (दुग्गय) दुःख को प्राप्त (भिक्खं ण लहंति) भिक्षा को भी नहीं पाते हैं।

पुण्णेण कुलं विउलं कित्ति पुण्णेण भमइ तियलोए।
पुण्णेण रूवमतुलं सोहग्गं जोव्वणं तेयं।।266।।

अन्वयार्थः- (पुण्णेण विउलं कुलं) पुण्य से विशाल विपुल कुल में जन्म होता है, (पुण्णेण तियलोए) पुण्य से तीनों लोकों में (कित्ति भमइ) कीर्ति फैलती है, (पुण्णेण अतुलं रूवं) पुण्य से अतुल अनुपम रूप (सोहग्गं) सौभाग्य (जोव्वणं) यौवन और (तेयं) तेज की प्राप्ति होती है।

सम्मादिट्ठी पुण्णं ण होइ संसारकारणं णियमा।
मोक्खस्स होइ हेउ जइ वि णिदाणं ण सो कुणई।।267।।

अन्वयार्थः- (सम्मादिट्ठी पुण्णं) सम्यग्दृष्टि जीव का पुण्य (णियमा) नियम से (संसार कारणं ण होइ) संसार का कारण नहीं होता है। (मोक्खस्स हेउ होइ) बल्कि मोक्ष का कारण ही होता है (वि) तथा (जइ) यदि (सो) वह (णिदाणं ण

कुणइ) निदान नहीं करता है।

अकय णिदाणो सम्मो पुण्णं काऊण णाणचरणट्ठो।
उप्पज्जइ दिवलोए सुहपरिणामो सुलेसो वि।।268।।

अन्वयार्थः- (अकय णिदाणो सम्मो) जिसने निदान नहीं किया, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव (णाणचरणट्ठो) ज्ञान चारित्र में स्थित होता हुआ (पुण्णं काऊण) पुण्य करके (सुहपरिणामो वि सुलेसो) शुभ परिणाम एवं शुभ लेश्या से सहित (दिवलोए) देवलोक में (उप्पज्जइ) उत्पन्न होता है।

अंतरमुहुत्तमज्झे देहं चइऊण माणुसं कुणिमं।
गेण्हइ उत्तमदेहं सुचरियकम्माणुभावेण।।269।।

अन्वयार्थः- (सुचरियकम्माणुभावेण) समाचरित पुण्य कर्म के प्रभाव से (अंतरमुहुत्तमज्झे) अंतर मुहूर्त मात्र में (कुणिमं माणुसं देहं) अपवित्र मनुष्य देह को (चइऊण) छोड़कर (उत्तमदेहं) देवीय दिव्य उत्तम शरीर को (गेण्हइ) ग्रहण करता है।

चम्मं रुहिरं मंसं मेहं अट्ठिं तह वसा सोक्कं।
सेम्मं पित्तं अंत्तं मुत्तं पुरिसं च रोमाणि।।270।।

अन्वयार्थः- (चम्मं) चर्म (रुहिरं) रुधिर/खून (मंसं) माँस (मेहं) मेदा (अट्ठिं) अस्थि/हड्डी (तह) तथा (वसा) चर्बी (सोक्कं) शुक्र/वीर्य (सेम्मं) श्लेष्मा/कफ (पित्तं) पित्त (अंत्तं) आँत (मुत्तं) मूत्र (पुरिसं) मल (च) और (रोमाणि) रोम-

णह दंत सिरण्हारु लाला सेयं च णिमिस आलस्स।
णिद्दा तण्हा य जरा अंगे देवाण ण हु अत्थि।।271।।

अन्वयार्थः- (णह) नख (सिरण्हारु) शिरायें या नाक मल (दंत) दाँत (लाला) लार (सेयं) पसीना (णिमिस) पलकों का झपकना (च) और (आलस्स) आलस्य (णिदद्रा) नींद (तण्हा) प्यास (य) और (जरा) बुढ़ापा (देवाण अंग) देवों के शरीर में (हु) नियम से ये सब (ण अत्थि) नहीं होते हैं।

सुइ अमलो वरवण्णो देहो सुहफासगंधसंपण्णो।
वालरवितेजसरिसो चारुसरूवो सया तरुणो।।272।।

अन्वयार्थः- (सुइ अमलो) शुचि निर्मल (वरवण्णो) श्रेष्ठ वर्ण (सुहफासधसंपण्णो) शुभ स्पर्श, शुभ गंध से सहित (देहो) शरीर (वालरवितेजसरिसो) प्रातः कालीन सूर्य के तेज के समान (चारुसरूवो) सुन्दर स्वरूप (सया तरुणो) सदा तरुण-

अणिमा महिमा लहिमा पावइ पागम्म तह य ईसत्तं।
वसियत्तकामरूवं इत्तिय गुणेहिं संजुत्तो।।273।।

अन्वयार्थः- (अणिमा) अणु रूप धारण करना, (महिमा) महान रूप धारण करना, (लहिमा) लघु रूप धारण करना, (पागम्म) वांछित वस्तु को प्राप्त करना (ईसत्तं) स्वामी पना (वसियत्त) वश में करने रूप (तह) तथा (कामरूवं) इच्छित रूप को धारण करने वाला (इत्तिय) इन (गुणेहिं संजुत्तो) गुणों से सहित, देवों का वैक्रियक शरीर होता है।

देवाण होइ देवो अइउत्तम पुग्गलेण संपुण्णो।
सहजाहरणणिउत्तो अइरम्मो होइ पुण्णेण।।274।।

अन्वयार्थः- (पुण्णेण) पूजा, दान के द्वारा उपार्जित पुण्य से (अइउत्तम) अति उत्तम (सहजाहरणणिउत्तो) सहज आभरण सहित (पुग्गलेण) शरीर से (संपुण्णो) पुण्य सहित (सइरम्मो) अति रमणीय (देवाण देवो होइ) देवों का देव इन्द्र होता है।

उप्पण्णो रयणमए कायं कंतीए भासियब्भवणे।
पिच्छंतो रयणमयं पासायं कणय दित्तिल्लं।।275।।

अन्वयार्थः- (रयणमए) रत्नमय (भासियब्भवणे) प्रज्ञा से प्रकाशित भवन में, (कायं कंतीए) शरीर की कांति से, (कणय दित्तिल्लं) स्वर्ण की दीप्ति से, दीपित मान (रयणमयं पासायं) रत्नमय प्रासाद (महल) को (पिच्छंतो) देखते हुए उत्पन्न होता है।

अनुकूलं परियणयं तरलिय णयणं च अच्छरा णिवहं।
पिच्छंतो णमियसिरं थिर कर कायंजली देवो।।276।।

अन्वयार्थः- (तरलिय णयणं) चंचल नेत्र वाली (अच्छरा णिवहं) अप्सराओं के समूह को (परियणयं अनुकूलं) अनुकूल परिजन (च) और (थिर कर कायंजली) स्थिरकाय तथा हस्तांजलि से (णमियसिरं) नम्रीभूत सिर वाले (देवो) देवों को (पिच्छंतो) देखता हुआ-

णिसुणंतो थोत्तसए सुरवरसच्छेण विरइए ललिए।
तुंबरू गाइय गीए वीणासद्देण सुह सुहिए।।277।।

अन्वयार्थः- (सुरवरसच्छेण) श्रेष्ठ देवों के द्वारा स्वच्छता से (थोत्तसए णिसुणंतो) सैंकड़ों स्तोत्रों को सुनता हुआ। (विरइए) विरचित (ललिए) ललित (तुंबरु) तुम्बर जाति के देवों के द्वारा (गाइय गीए) गाये गये गीतों से (सुह) शुभ (वीणासद्देण) वीणा के शब्दों से (सुहिए) शुभ से सहित अच्छे हितकर सुनता है।

चिंतइ किं एवडत्तं मज्झपहुत्तणं इमं जायं।
किं ओलग्गइ एसो अमरगणो विणयसंपण्णो।।278।।

अन्वयार्थः- तत्पश्चात् वह उत्पन्न देव अपने मन में (चिंतइ) विचारता है (किं) क्या (एवडत्तं) इस तरह इतना (इमं) यह (मज्झ) मेरा (पहुत्तणं) प्रभुत्व प्रभाव (एसो) यह (विणय संपण्णो) विनय सहित (अमरगणो) देव समूह (किं) क्यों (ओलग्गइ) सेवा में लगा हुआ है।

कोहं इह कत्थाओ केण विहाणेण इयं पयं पत्तो।
तविओ को उग्गतवं केरिसयं संजमं विहिओ।।279।।

अन्वयार्थः- (इह) यहाँ पर (कोहं) मैं कौन हूँ, (कत्थाओ) ये स्थान कौन सा है (को उग्गतवं तविओ) मैंने कौन से उग्र तप को तपा (केरिसयं) किस तरह (संजमं विहिओ) संयम का पालन किया, (केण विहाणेण) किस विधान से (इयं पयं पत्तो) यह पद प्राप्त किया।

किं दाणं मे दिण्णो केरिसपत्ताण काए भत्तीए।
जेणाहं कयपुण्णो उप्पण्णो देवलोयम्मि।।280।।

अन्वयार्थः- (मे किं दाणं दिण्णो) मैंने कौन सा दान दिया, (केरिस पत्ताण) किस तरह के पात्रों की (भत्तीए काए) भक्ति की, (जेणाहं) जिससे मैं (कयपुण्णो) कृतपुण्य (देवलोयम्मि) देव लोक में (उप्पण्णो) उत्पन्न हुआ।

इय चिंतंतो पसरइ ओहीणाणं तु भवसहावेण।
जाणइ सो आसिभवं विहियं धम्मपहावं च।।281।।

अन्वयार्थः- (इय चिंतंतो) ऐसा विचार करते हुए (भवसहावेण) इस देव पर्याय की योग्यता से भव प्रत्यय से (ओही णाणं) अवधि ज्ञान (पसरइ) प्रकट होता है (च) और (सो) वह (आसिभवं) पूर्व भव में (विहियं) किये हुए (धम्म पहावं) धर्म के प्रभाव को (जाणइ) जानता है।

पुणरवि तमेव धम्मं मणसा सद्दहइ सम्मदिट्ठी सो।
वंदेइ जिण हराणं णंदीसर पहुइसव्वाइं।।282।।

अन्वयार्थः- (सो) वह (सम्मदिट्ठी) सम्यग्दृष्टि देव (पुणरवि) फिर भी (तमेव धम्मं) उस जिन धर्म का ही (मणसा) मन से (सद्दहइ) श्रद्धान करता है, (णंदीसर पहुइदसव्वाई) नंदीश्वर द्वीप आदि सभी द्वीपों में (जिणहराणं) जिन मंदिरों की (वंदेइ) वन्दना करता है।

इय बहुकालं सग्गे भोए भुंजिसु विविह रमणीए।
चइऊण आउस खए उप्पज्जइ मच्च लोयम्मि।।283।।

अन्वयार्थः- (इय बहुकालं) इस तरह बहुत काल तक (सग्गे) स्वर्ग में (विविह रमणीए) विविध प्रकार के मनोहर (भोए) भोगों को (भुंजिसु) भोगता है। (आउस खए) आयु कर्म के क्षय होने पर (चइऊण) स्वर्ग से च्युत होकर (मच्च लोयम्मि) मृत्यु लोक में (उप्पज्जइ) उत्पन्न होता है।

उत्तमकुले महल्लो बहुजण णमणीय संपया पउरे।
होऊण अहिय रूवो बल जोव्वण रिद्धि संपत्तो।।284।।

अन्वयार्थः- (महल्लो) महान (बहुजण णमणीय) बहुत जनों के द्वारा नमन करने योग्य (संपया पउरे) सम्पदा से प्रचुर वैभवशाली (उत्तम कुले) उत्तम कुल में (अहिय रूवो) अधिक रूप अतिसुंदर रूप (होऊण) होकर (बल जोव्वण रिद्धि संपत्तो) बल, यौवन, रिद्धि से सम्पन्न होता है।

तत्थवि सुहाइं भुत्तं दिक्खा गहिऊण भविय णिग्गंथो।
सुक्कं झाणं पाविय कम्मं हणिऊण सिज्झेहि।।285।।

अन्वयार्थः- (तत्थवि) वहाँ मनुष्य पर्याय में भी (सुहाइं) सुखों को (भुत्तं) भोगकर (दिक्खा गहिऊण) दीक्षा ग्रहण कर (णिग्गंथो) निस्परिग्रही नग्न साधु होकर (सुक्कं झाणं) शुक्ल ध्यान को (पाविय) पाकर (कम्मं हणिऊण) कर्मों का नाशकर (सिज्झेहि) सिद्ध होता है।

आहारासणणिद्दाविजओ तह इंदियाण पंचण्हं।
वावीसपरिसहाणं कोहाईणं कसायाणं।।286।।

अन्वयार्थः-(आहारासण णिददा) जो व्रतिवर आहार, आसन, निद्रा (तह) तथा (पंचण्हं इंदियाण) पंच इंद्रियों, (वावीसपरिसहाणं) बाईस परिषहों, (कोहाईणं) क्रोधाग्नि, (कसायाणं) कषायों पर (विजओ) विजय प्राप्त करता है-

णिस्संगो णिम्मोहो णिग्गय वावारकरणसुत्तट्ठो।
दिढकाउ थिरचित्तो एरिसओ होइ झायारो।।287।।

अन्वयार्थः– (णिस्संगो) संघ रहित तथा अपरिग्रही, (णिम्मोहो) निर्मोही, (वावारकरण णिग्गय) इन्द्रिय व्यापार से निर्गत/रहित (सुत्तट्ठो) जिन सूत्र में स्थित (दिढकाउ) सुदृढ़ उत्तम संहनन से युक्त (थिरचित्तो) स्थिर चित्त (एरिसओ) ऐसा (झायारो होइ) ध्याता पुरुष होता है।

लहिऊण सोक्कझाणं उप्पाइय केवलं वरं णाणं।
सिज्झाइ णट्ठकम्मे अहिसेयं लहिय मेरुम्मि।।288।।

अन्वयार्थः– (मेरुम्मि) मेरु पर्वत पर (अहिसेयं) अभिषेक को (लहिय) प्राप्त कर (सोक्कझाणं) शुक्ल ध्यान को (लहिऊण) प्राप्त कर (वरं) श्रेष्ठ (केवलं णाणं) केवल ज्ञान को (उप्पाइय) उत्पन्न कर ।।प्रकट कर।। (णट्ठकम्मे) कर्मों का नाश कर (सिज्झाइ) सिद्ध होता है अर्थात् मुक्ति प्राप्त करता है।

जाणंतो पेछंतो कालत्तयवट्टियाइं दव्वाइं।
उत्तो सो सव्वण्हू परमप्पा परमजोईहि।।289।।

अन्वयार्थः– (कालत्तयवट्टियाइं) त्रिकालवर्ती (दव्वाइं) द्रव्यों को (पेछंतो) देखता (जाणंतो) जानता रहता है, (सो) वह (परमजोईहि) परम योगियों के द्वारा (परमप्पा) परमात्मा (सव्वण्हू) सर्वज्ञ (उत्तो) कहा गया है।

णट्ठट्ठपर्याडबंधो चरमसरीरेण होइ किंचूणो।
उड्ढं गमणसहावो समएणिक्केण पावेइ।।290।।

अन्वयार्थः- (णट्ठट्ठपयडिबंधो) नष्ट कर दिया है जिन्होंने, आठ प्रकार के प्रकृति कर्म बंध को (चरमसरीरेण) चरम ।।अंतिम।। शरीर से (किंचूणो) कुछ कम (होइ) होते हैं। (समएणिक्केण) एक समय के द्वारा (उड्ढं गमणसहावो) उर्ध्व गमन स्वभाव को (पावेइ) प्राप्त करते हैं।

लोयग्ग सिहर खित्तं जावं तणु पवण उवरिमं भायं।
गच्छइ ताम अथक्को धम्मत्थितेण आयासो।।291।।

अन्वयार्थः- (धम्मत्थितेण) धर्मास्तिकाय रूप निमित्त से व्याप्त (आयासो) आकाश (तणु पवण उवरिमं भायं) तनु वातवलय के ऊपरी भाग में (लोयग्ग सिहर खित्तं) लोकाग्र शिखर क्षेत्र (जावं) जहाँ तक है, (ताम) वहाँ तक (अथक्को) बिना रुके ऋजु गति से (गच्छइ) गमन करता है।

चलणं वलणं चिंता करणीयं किंपि णत्थि सिद्धाणं।
जम्हा अइंदियत्तं कम्माभावे समुप्पण्णं।।292।।

अन्वयार्थः- (सिद्धाणं) सिद्ध जीवों को (चलणं)चलने (वलणं) बोलने (करणीयं) करने योग्य कार्य की (किंपि) कुछ भी (चिंता) चिंता (णत्थि) नहीं है, (जम्हा) क्योंकि (कम्मा भावे) कर्मों के अभाव हो जाने से (अइंदियत्तं) अतिन्द्रियपना (समुप्पण्णं) प्रकट हुआ है।

।।इति विधि प्रकरण।।

नमस्कार

णट्ठट्ठ कम्म बंधण जाइ जरा मरण विप्प मुक्काणं।
अट्ठवरिट्ठगुणाणं णमो णमो सव्व सिद्धाणं।।293।।

अन्वयार्थः- (णट्ठट्ठ) नष्ट कर दिया है अष्ट (कम्मबंधण) कर्म बंधन को जिन्होंने ऐसे, (जाइ जरा मरण विप्प मुक्काणं) जन्म-जरा-मृत्यु से सर्वथा मुक्त (अट्ठवरिट्ठगुणाणं) अनंत ज्ञानादि आठ विशिष्ट गुणों से सम्पन्न (सव्व सिद्धाणं) सब सिद्धों को (णमो णमो) बारंबार नमस्कार हो।

प्रशस्ति

एसो तच्चवियारो सारो सज्जणजणाण सिवसुहदो।
वसुनंदिसुरिरइओ भव्वाण पवोहणट्ठं खु।।294।।

अन्वयार्थः- (एसो तच्चवियारो सारो) यह 'तत्त्व विचार सार' (सज्जण जणाण) सज्जन पुरुषों को (सिवसुहदो) शिव सुख देने वाला है, (वसुनंदि सुरि) जिसे वसुनंदि आचार्य ने (खु भव्वाण पवोहणट्ठं) निश्चित ही भव्य जनों के प्रबोध के लिये (रइओ) रचा।

जो पढइ सुणइ अक्खइ अण्णं पाढाइ देइ उपएसं।
सो हणइ णियय कम्मं कमेण सिद्धालयं जाइ।।295।।

अन्वयार्थः- (जो) जो पुरुष इस 'तत्व विचार सार' नामक ग्रंथ को (पढई) पढ़ता है, (सुणइ) सुनता है, (अक्खइ) जानता है, (अण्णं पाढ़ाइ) दूसरों को पढ़ाता है, (उपएसं देइ) उपदेश देता है (सो) वह (णियय कम्मं) अपने कर्मों को (कमेण) क्रम से (हणइ) नष्ट करता है और (सिद्धालयं जाइ) सिद्धालय को जाता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है।

समाप्त